कुछ क्षण निकालना अब अगंभीर कथन हो गया है। अध्यक्ष की वक्तव्य शैली पर भी जोशी जी ने व्यंग्य किया है। अध्यक्ष सर्वज्ञ जैसा वक्तव्य देता है। वह सभी जगह गोल-मोल ही बोलता है। प्रमुख वक्ता का विरोध वह इसलिए करता है कि इस विरोध से वह समझता है कि उसकी प्रतिष्ठा बढ़ रही है; जबकि विरोध केवल शाब्दिक छल मात्र रहता है। विरोध प्रकट करना और फिर वक्ता की प्रशंसा करना भी अध्यक्ष के वक्तव्य में निहित एक ऐसा अंतर्विरोध है; जो उसकी वक्तव्य क्षमता की कलई खोल देता है। इस तरह की छद्म-लोकप्रियता से घिरा हुआ अध्यक्ष एक व्यर्थ के 'अहं' को पाल लेता है। अध्यक्ष के बहाने व्यंग्यकार ने तथाकथित बुद्धिजीवियों की भी खबर ली है। एक साथ इस व्यंग्य निबंध में अध्यक्ष, वक्ता, आयोजन कर्ता और कार्यक्रमों के घटिया होते स्तर पर मार्मिक आघात किया गया है। जोशी जी ने इस निबंध में व्यंग्य के भाषागत सौन्दर्य को अपनी छोटी-छोटी उक्तियों के माध्यम से व्यक्त किया है। ये उक्तियाँ कहीं-कहीं सूक्तियों जैसी लगने लगती हैं। निबन्ध में आद्योपांत व्यंग्य समाहित है। इसलिए इसमें प्रवाह है और इसमें पग-पग पर पाठक को चमत्कृत कर देने की सामर्थ्य है।

अध्यक्ष महोदय

हर शहर में कुछ अध्यक्ष किस्म के लोग पाए जाते हैं। यह शहर के साइज पर निर्भर करता है कि वहाँ कितने अध्यक्ष हों। छोटे शहरों में एक या दो व्यक्ति ऐसे होते हैं जो हर कहीं अध्यक्षाई में लगे रहते हैं। इसका कारण शायद यह हो कि शेरवानी हर आदमी नहीं सिलवा पाता। जो सिलवा लेते हैं, उनकी अध्यक्षता चल निकलती है। शेरवानियाँ या तो दूल्हों के लिए सिलती हैं या अध्यक्ष के लिए। पेशेवर अध्यक्षों के पास प्राय: दो शेरवानियाँ होती हैं। एक उसमें जरूर काली होती है। दो शेरवानियों से लाभ यह है कि अगर एक धुलने चली गई तो भी वे अध्यक्षता से इन्कार नहीं करते। दूसरी पहन चले जाते हैं। सड़े टमाटर और अण्डे फेंककर दाद देने का रिवाज जब से चल पड़ा है, शेरवानियाँ धुलवाना हर मीटिंग के बाद फर्श घरी करवाने की तरह आवश्यक हो गया है। यों अध्यक्षों को शेरवानी धुलवाने का वक्त नहीं मिलता। मेरे शहर के पुराने अध्यक्षों की शेरवानियों से एक विशेष प्रकार की गन्ध आने लगी है- अध्यक्षता की गन्ध। यह गन्ध शेरवानियों से लगातार आती है और वे कस्तूरी मृग-से मगन रहते हैं।

अध्यक्ष के बारे में कहा जाता है कि वे चुने गए या बनाए गए होते हैं पर असली अध्यक्ष न बनाया जाता है, न चुना जाता है। वह पैदा होता है। नरगिस जब बेनूरी पर काफ़ी रो लेती है तब आप शहर में जन्म लेते हैं। एक शहर में एक पूरी पीढ़ी एक अध्यक्ष को या तीन-चार अध्यक्षों के भाषण झेलती जीवित रहती है। लोग मरते जाते हैं और अध्यक्ष जीवित रह शोक-सभाओं में बोलता रहता है।

प्राय: अध्यक्ष गम्भीर क़िस्म का प्राणी होता है या उसमें यह भ्रम बनाए रखने की शक्ति होती है कि वह गम्भीर है। जिस शाम उसे अध्यक्षता करनी होती है, वह तीन-साढ़े तीन बजे से गम्भीर हो जाता है। कुछ तो सुबह के नौ बजे से ही गम्भीर हो जाते है। ठीक भी है। नौ बजे सुबह से गम्भीर हो जाने वाला व्यक्ति रात के आठ बजे तक मनहूस हो जाता है जो कि अच्छे अध्यक्ष होने की पहली शर्त है। अच्छा अध्यक्ष मनहूस होता है बल्कि कहना होगा मनहूस ही अच्छे अध्यक्ष होते हैं।

अध्यक्षता एक मर्ज है। लग गया यानी हमेशा के लिए। असली पेशेवर अध्यक्ष किसी सभा में तभी जाते हैं जब वे वहाँ अध्यक्ष हों। वे भीड़ में नहीं बैठ सकते। वे जब निमंत्रित किए जाते हैं, यह मान कर चलते हैं कि वे अध्यक्ष होंगे। जिन सभाओं में यह घोषणा नहीं होती कि अध्यक्ष कौन होगा, उसमें वे आते हैं और आगे की पंक्ति में यों भोले बनकर

बैठ जाते हैं जैसे महज श्रोता हों। जब उनका नाम प्रस्तावित होता है, वे आश्चर्य करते है और तकल्लुफ प्रदर्शन कर बाद में बन जाते हैं। बनाने वाले जानते हैं कि वे अध्यक्ष बनेंगे और वे जानते हैं कि उन्हें बनना है। हर सभा में जब तक माइक और अध्यक्ष फिट नहीं होते, सभा ठिठकी रहती है। माइक के सामने एक अध्यक्ष फिट किया जाना जरूरी है। पचास-सौ वर्षों बाद तो अध्यक्षता इतनी विकसित हो जाएगी कि खुद माइक वाला अपने साथ अध्यक्ष लाएगा और मंच पर फिट कर देगा।

अध्यक्ष बनने वाले कई तरह से अध्यक्ष बनते हैं। कुछ चौंककर अध्यक्ष बनते हैं, कुछ सहज अध्यक्ष बन जाते हैं, कुछ दूल्हे की तरह लजाते-मुस्कराते अध्यक्ष बनते हैं। कुछ यों अध्यक्ष बनते है, जैसे शहीद होने जा रहे हों। कुछ हेडमास्टर की अदा से अध्यक्ष बनते हैं। अध्यक्षता करता अध्यक्ष प्राय: हर पाँचवें मिनट पर मुस्कराता है। ऐसा वह तब करता है जब इसकी कोई वजह नहीं होती। हर ढाई मिनट पर वह जनता की तरफ देखता है, हर एक मिनट बाद सामने की पंक्ति में बैठे लोगों को और हर दो मिनट बाद महिलाओं को। इस बीच वह छत की तरफ़ देखता है। ठुड्डी पर उँगलियाँ फेर सोचता है कि शेव कैसी बनी ? लगातार बदन खुजलाने और बार-बार टोपी सिर पर रखने-उतारने की आदत भी अध्यक्षों में देखी जाती है। कुछ अध्यक्ष वक्ताओं को निरन्तर आश्चर्य से देखते रहते हैं कि आखिर वह क्या कह रहा है, क्यों कह रहा है और कब तक कहेगा।

अध्यक्ष की एक विशेषता होती है कि वह देर से आता है। वह नहीं तो वक्ता देर से आता है। शायद दोनों तय कर लेते हैं कि कौन देर से पहुँचेगा। कई बार दोनों आ बैठते हैं, तब श्रोता नहीं आते। जिस वस्तु पर कंट्रोल लग जाता है उसकी दुकान देर से खुलती है, भीड़ पहले लग जाती है। जो माल खुले बिकता है, उसकी दुकान सुबह से खुलती है पर ग्राहक नहीं आता है। भाषण एक ऐसी दुकान है जो हर कहीं खुल जाती है, ग्राहक लापरवाह हो जाता है। बड़ा अध्यक्ष देर से आता है क्योंकि वह व्यस्त होता है। धन्यवाद देने वाले उन्हें इसी बात का धन्यवाद देते हैं कि इतने व्यस्त होने पर भी वे समय निकाल कर आए। जो शख्स पूरी जिन्दगी अध्यक्षताएँ करने का तय किए हुए है उसका आभार माना जाता है कि उन्होंने अध्यक्षता करना स्वीकार किया।

अच्छे अध्यक्ष रेडीमेड अध्यक्ष होते हैं। वे किसी भी विषय पर बोल सकते हैं। सब विषयों पर वे एक ही अन्दाज से एक ही बात कहते हैं। उनके दिमाग़ की हालत उस नौ रतन चटनी की तरह हो जाती है जिसमें काजू और किशमिश का स्वाद एक हो जाता है। सब में एक-सा मजा आने लगता है।

अच्छे अध्यक्षों की अदा है कि प्रमुख वक्ता से असहमत हो जाते हैं। जैसे वक्ता ने अपने भाषण में कहा कि अभी रात है तो अध्यक्ष महोदय अपने भाषण में कहेंगे कि अभी मेरे विद्वान मित्र ने कहा कि इस समय रात है। और एक तरह से कहा जा सकता है कि रात है। हो सकता है आप में से कुछ लोग इस बात को मानते हैं कि रात है, मगर फिर भी एक सवाल हमारे सामने आता है कि क्या यही रात है ? और इसे रात कहना ठीक होगा ? वक्ता महोदय मुझे क्षमा करें, यह उनका दृष्टिकोण हो सकता है कि अभी रात है; और हो सकता है कि अपनी जगह ठीक भी हो, फिर भी एक-दूसरा सवाल मेरे सामने उठता है। क्योंकि अगर हम किसी समस्या पर विचार करने चले हैं तो उसके सभी पहलुओं पर ध्यान दिया जाए। तो जैसा वक्ता महोदय ने कहा कि रात है, मैं इसी सिलसिले में कहना चाहूँगा कि हमारी भारतीय संस्कृति में, आप कोई ग्रन्थ उठा लीजिए, गीता, रामायण कोई ग्रन्थ उठा लीजिए, रात की एक परिभाषा दी है। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने रात के विषय में विचार किया है, जाना है, परखा है और उसकी मर्यादा निश्चित की है। मैं पूछना चाहूँगा कि हमारे प्राचीन भारत में रात नहीं होती थी ? जी नहीं, जो लोग ऐसा कहते हैं, मैं उनसे सहमत नहीं। यदि सूर्य हमारे देश में पहले उगता है तो रात भी यहाँ पहले होती है। इस मामले में भारत सदैव पश्चिम से आगे रहा है। ठीक है, मैं मानता हूँ कि समय बदला है, परिस्थितियाँ बदली हैं और जो बात कल थी वह आज नहीं है, फिर भी एक समस्या हमारे सामने

खड़ी होती है कि क्या यह रात है ? यह सच है कि सूरज डूब गया है और अन्धकार है, पर यही तो पर्याप्त आधार नहीं कि हम कह दें कि यह रात है। दृष्टिकोण में अन्तर हो सकता है, आप कुछ सोचते हैं, मैं कुछ सोचता हूँ, फिर भी एक बात हमें माननी होगी और मैं इस पर जोर देना चाहूँगा कि आज आप देश की स्थिति देख रहे हैं। जो कुछ हो रहा है हमारे सामने है। ऐसी स्थिति में यह कहना कि रात है, क्या समय के साथ न्याय करना होगा ? आप इस पर विचार करें। यह प्रश्न आज हम सबके सामने है कि क्या, जैसा कि हमारे सम्माननीय वक्ता महोदय ने कहा, यह रात है! और अगर एक बार मान भी लिया जाए कि यह रात है, तो मैं पूछना चाहूँगा कि दिन क्या है ? शायद आप परेशान हो जाएँगे कि यह क्या सवाल खड़ा हो गया, पर यह सवाल है। आज देश के सभी सोचने-समझने वाले बुद्धिजीवियों के सामने यह सवाल है कि क्या आप इस वक़्त को रात कहेंगे ? मेरे कहने का तात्पर्य यही है कि हम बात को ठण्डे दिल से सोचें और सभी पक्षों पर विचार कर निर्णय लें। मैं वक्ता महोदय का आभारी हूँ कि उन्होंने अपने ओजस्वी भाषण में यह कहकर कि इस समय रात है एक अत्यन्त सामाजिक और गम्भीर समस्या की ओर हम सबका ध्यान खींचा है और हमें यह सोचने के लिए मजबूर कर दिया कि क्या यह रात है ? अन्त में आप सबकी ओर से वक्ता महोदय को धन्यवाद देता हूँ उनके आज के विचारपूर्ण और सार गर्भित भाषण के लिए और मैं आभारी हूँ आप सबका कि आपने मुझे अध्यक्ष बनाया, यह सम्मान दिया और शान्तिपूर्वक सुना। इतना कहकर मैं सभा की कार्यवाही समाप्त घोषित करता हूँ क्योंकि अब रात काफ़ी हो गई है। धन्यवाद!

उसके बाद अध्यक्ष महोदय मुस्कराने लगते हैं। गम्भीरता का जो बाँध उन्होंने सुबह नौ बजे से बाँधा था, एकाएक टूट पड़ता है और वे मुस्कराते हैं। धीरे-धीरे सभा-भवन एक विचारहीन दिमाग की तरह खाली हो जाता है। सब घर चले जाते हैं।

अध्यक्षता करने के बाद अध्यक्ष सुख की नींद सोता है। नए-नए अध्यक्ष घर जाकर पत्नी को बताते हैं कि आज क्या हुआ और अपना पूरा भाषण दोहराते हैं। पर धीरे-धीरे पत्नी भी नगर के सामान्य नागरिकों की तरह बोर होने लगती है और नहीं सुनती। फिर वे भी चुप रहने लगते हैं। देर रात तक अपने भाषण पर खुद मोहित हो सो जाते हैं। उस उम्र तक उसकी बौद्धिक नपुंसकता अहं में बदल चुकी होती है। वे जानते हैं कि यह रात है पर फिर सुबह होगी, फिर कोई उन्हें अध्यक्षता के लिए बुलाने आएगा। आता भी है। आएगा नहीं तो जाएगा कहाँ!

अभ्यास

अति लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. पेशेवर अध्यक्ष किस प्रकार के वस्त्र पहनते हैं ?
2. अध्यक्ष को गंभीर किस्म का प्राणी क्यों कहा गया है ?
3. रेडीमेड अध्यक्ष किसे कहा जाता है ?
4. पुराने अध्यक्ष की शेरवानियों से किस प्रकार की गन्ध आती है ?
5. अध्यक्षता करने को मर्ज क्यों कहा गया है ?

लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. अध्यक्ष के बारे में सामान्य धाराणाएँ क्या हैं ?
2. अध्यक्ष के देर से आने के कारणों पर प्रकाश डालिए।

3. अध्यक्ष बनने वाले कितनी तरह से अध्यक्ष बनते हैं ? स्पष्ट कीजिए।

4. अध्यक्षीय दायित्व का निर्वहन करने के पश्चात अध्यक्ष घर जाकर सुख की नींद क्यों सोता है ?

5. अच्छे अध्यक्ष के मस्तिष्क की हालत कैसी होती है ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

1. अध्यक्षता करते समय अध्यक्ष की गतिविधियों पर प्रकाश डालिए।

2. 'अच्छे अध्यक्ष' की विशेषताएँ बताइए।

3. ''अच्छे अध्यक्ष प्रमुख वक्ता से असहमत होते हैं'', कारण सहित स्पष्ट कीजिए।

4. **भाव स्पष्ट कीजिए -**

   (i) ''नरगिस जब बेनूरी पर काफी रो लेती है, तब आप शहर में जन्म लेते हैं।''

   (ii) ''पचास-सौ वर्षों बाद तो अध्यक्षता इतनी विकसित हो जाएगी कि खुद माइक वाला अपने साथ अध्यक्ष लाएगा और मंच पर फिट कर देगा।''

   (iii) ''लोग मरते जाते हैं और अध्यक्ष जीवित रह शोक-सभाओं में बोलता रहता है।''

5. 'अध्यक्ष महोदय' शरद जोशी का राजनीतिक और सामाजिक व्यंग्य है इस विषय पर अपने विचार लिखिए।

भाषा अध्ययन

1. **नीचे दिए शब्दों में से मूल शब्द, उपसर्ग और प्रत्यय अलग कीजिए -**

   अध्यक्षता, अनुकरण, सम्माननीय, गम्भीरता, असामान्य, विदेशी

2. **वाक्य शुद्ध कीजिए -**

   (i) ग्राहक लापरवाह हो जाती है।

   (ii) केवल मात्र अध्यक्षता के लिए शेरवानी सिलवाते हैं।

   (iii) वह सप्रमाण सहित पत्र लेकर उपस्थित हो गया।

   (iv) गांधीजी का देश सदा आभारी रहेगा।

   (v) आपका भवदीय।

3. **निम्नांकित शब्दों के विलोम शब्द लिखिए -**

   लाभ, विकसित, उपाय, मर्यादित, समस्या, पर्याप्त

ध्यान दीजिए -

(i) राम पुस्तक पढ़ रहा है।

(ii) राम पुस्तक नहीं पढ़ रहा है।

(iii) शायद राम पुस्तक पढ़ रहा है।

(iv) राम पुस्तक पढ़ो।

(v) अच्छा! राम पुस्तक पढ़ रहा है।

ऊपर लिखे वाक्यों को देखिए। इन वाक्यों के पढ़ने पर इनके अर्थ अलग-अलग निकलते हैं। पहले वाक्य में 'राम पुस्तक पढ़ रहा है' मात्र सूचना मिलती है। दूसरे वाक्य में 'पुस्तक नहीं पढ़ रहा है' में कार्य के निषेध होने का बोध है। तीसरा वाक्य 'शायद' के कारण संदेह की भावना प्रकट करता है तो चौथे वाक्य में 'पढ़ो' से आज्ञा का बोध होता है। पाँचवा वाक्य 'अच्छा!' के माध्यम से विस्मय का भाव प्रस्तुत करता है। इस प्रकार अर्थ के आधार पर वाक्य के आठ भेद होते हैं –

(i) विधानवाचक वाक्य – जिस वाक्य से किसी क्रिया के करने या होने का बोध होता है उसे विधान वाचक वाक्य कहते हैं। **जैसे** – (1) 'रमेश ने खाना खाया।'
(2) 'राधा का भाई आने वाला है।'

(ii) निषेधवाचक वाक्य – जिन वाक्यों में किसी कार्य के निषेध का बोध होता है निषेधवाचक वाक्य कहलाते हैं। **जैसे** – (1) 'मैं पढ़ नहीं रहा हूँ।'
(2) 'वह चल नहीं सकता है।'

(iii) प्रश्नवाचक वाक्य – जिन वाक्यों से मूल में कुछ जानने की इच्छा होती है, उत्तर की अपेक्षा रहती है। ऐसे वाक्य प्रश्नवाचक वाक्य कहलाते हैं; **जैसे**– (1) 'तुम्हारा नाम क्या है ?'
(2) 'तुम क्या कर रहे हो ?'

(iv) संदेहवाचक वाक्य – जिन वाक्यों से संदेह या शंका का भाव प्रकट होता है। उन्हें संदेहवाचक वाक्य कहते हैं। **जैसे** – (1) 'वह शायद कल मेरे घर आए।'
(2) 'सम्भवत: बरसात हो।'

(v) आज्ञावाचक वाक्य – जिन वाक्यों से आज्ञा या आदेश का बोध होता है वे आज्ञावाचक वाक्य कहलाते हैं; **जैसे** – (1) 'अब तुम जाओ।'
(2) 'आप चुप रहिए।'

(vi) इच्छा वाचक वाक्य – इस प्रकार के वाक्य में इच्छा, शुभ भावना या आशीर्वाद का भाव लक्षित होता है अर्थात वक्ता अपने लिए या दूसरों के लिए किसी न किसी इच्छा के भाव को प्रकट करता है।
जैसे – (1) 'ईश्वर तुम्हें सुख व समृद्धि दें।'
(2) 'आपकी यात्रा शुभ हो।'

(vii) संकेतवाचक वाक्य – जिन वाक्यों से एक क्रिया के दूसरी क्रिया पर निर्भर होने का बोध हो, उन्हें संकेतवाचक वाक्य कहते हैं। इस प्रकार के वाक्यों में किसी न किसी शर्त का उल्लेख होता है।
जैसे– (1) 'यदि वह आता तो मैं चला जाता।'
(2) 'अगर तुम परिश्रम करोगे तो पास हो जाओगे।'

(viii) विस्मयवाचक वाक्य – इन वाक्यों में विस्मय, आश्चर्य, घृणा, प्रेम, हर्ष, शोक आदि भाव प्रकट होते हैं, **जैसे** – (1) 'अरे! तुम कब आए।'
(2) 'ओह! बड़ा जुल्म हुआ।'

और भी जानिए –

जब किसी एक वाक्य को दूसरे वाक्य में बदलना हो तब विराम चिह्नों का विशेष ध्यान रखा जाता है। जिस प्रकार का वाक्य लिखा जाए उसमें उसी प्रकार के विराम चिह्नों का प्रयोग किया जाएगा जैसे –

1. तुम कल जाओगे। (आज्ञा वाचक)

अब इस वाक्य को यदि प्रश्नवाचक वाक्य में बदलना है तो इस प्रकार लिखेंगे –

- क्या तुम कल जाओगे ?

यदि इस वाक्य को विस्मय बोधक वाक्य में बदलना है तो लिखिए –

- ओह ! तुम कल जाओगे।

4. निम्नलिखित वाक्यों को पढ़कर अर्थ के आधार पर वाक्य भेद लिखिए –

(i) शायद आप परेशान हो जाएँ।
(ii) क्या यही रात है ?
(iii) अध्यक्ष गम्भीर किस्म का प्राणी होता है।
(iv) आप इस पर विचार करें।
(v) आएगा नहीं तो जाएगा कहाँ।
(vi) वे अध्यक्षता करने नहीं जाते हैं।
(vii) यदि सूर्य हमारे देश में पहले उगता है तो रात भी पहले यहाँ होती है।
(viii) ईश्वर आपका भला करे।

5. निम्नलिखित वाक्यों को निर्देशानुसार बदलिए –

1. अध्यक्ष महोदय मुस्कराने लगे। (प्रश्नवाचक में)
2. अध्यक्ष सुख की नींद सोता है। (निषेधात्मक में)
3. आप परेशान हो जाएँगे। (सन्देहवाचक में)
4. अच्छे अध्यक्ष प्रमुख वक्ता से असहमत होते हैं। (संकेतवाचक में)
5. कितना अद्‌भुत दृश्य है। (विस्मय वाचक में)

योग्यता विस्तार

1. यदि आप किसी कार्यक्रम में अध्यक्ष बनाए जाएँ तो आप किन-किन बातों की सावधानी रखेंगे ?
2. किसी का व्यक्तित्व उसकी शारीरिक मुद्राओं और मानसिक सोच से सामने आता है। इस विषय पर कक्षा में परिचर्चा आयोजित कीजिए।
3. शरद जोशी के अन्य सामाजिक व्यंग्य पढ़िए तथा उनसे प्रेरणा लेकर अपने आस-पास की किसी घटना को व्यंग्य रूप में लिखने का प्रयास कीजिए।

शब्दार्थ

किस्म = प्रकार *मर्ज* = रोग *सारगर्भित* = सारयुक्त

❋ ❋ ❋

तिमिर गेह में किरण-आचरण

डॉ. श्याम सुंदर दुबे

लेखक परिचय :

ललित निबंधकार, कवि, कथाकार, आलोचक और लोकविद् श्यामसुंदर दुबे 12 दिसंबर 1944 को मध्यप्रदेश (हटा, दमोह) के बर्तलाई ग्राम में जनमे हैं। आपने एम.ए., पी-एच.डी.तक शिक्षा प्राप्त की है। लोक संस्कृति से गहरा तादात्म्य रखने वाले डॉ. दुबे के लेखन में भारतीयता के उन तत्वों का समावेश है- जो अपनी प्रासंगिकता आज भी बनाए हुए हैं। आधुनिकता के तमाम छद्मों को जीते-भोगते हुए भी बुनियादी तौर पर वे ठेठ देशज हैं। गंवई-गाँव के संस्कारों में ढले लोक-जीवन के संगीत और उसकी लयमें रचे-बसे आधुनिकता के तमाम विभ्रमों के बीच भी वे अपनी इस बुनियादी पहचान को अनाहत बचाए हुए हैं।

डॉ. दुबे की लगभग पच्चीस पुस्तकें प्रकाशित हैं- इन पुस्तकों में ललित निबंध संकलन के रूप में 'कालमृगया', 'विषाद बांसुरी की टेर' 'कोई खिड़की इसी दीवार से' काव्य संकलनों में, रीते खेत में बिजूका 'ऋतुऐं जो आदमी के भीतर हैं', 'धरती के अनंत चक्करों में' उपन्यासों में- 'दाखिल खारिज', 'मरे न माहुर खाये' लोक-संस्कृति के रूप में 'लोक: परंपरा पहचान एवं प्रवाह' 'लोकचित्रकला : परंपरा और रचना-दृष्टि' 'लोक में जल' 'भारत की नदियाँ' आदि प्रमुख हैं।

डॉ. दुबे को उनके रचना-कर्म पर अनेक सम्मान तथा पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। म.प्र. साहित्य अकादमी का 'बालकृष्ण शर्मा नवीन पुरस्कार, 'म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन का 'वागीश्वरी' पुरस्कार, छत्तीसगढ़ शासन का 'लोक संस्कृति' केन्द्रित सम्मान, डॉ. शंभूनाथ सिंह रिसर्च फाउंडेशन वाराणसी का डॉ. शंभूनाथ सिंह अखिल भारतीय नवगीत पुरस्कार आदि प्रमुख हैं।

डॉ. दुबे अनेक वर्षों तक म.प्र. के महाविद्यालयों में प्राध्यापक रहे। वे शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय के प्राचार्य पद से सेवा निवृत्त होकर आजकल निदेशक, मुक्तिबोध सृजन पीठ, डॉ. हरी सिंह गौर विश्वविद्यालय सागर, में कार्यरत हैं।

केन्द्रीय भाव :

साहित्य में जीवन को ऊर्जावान बनाने की शक्ति निहित है। समकालीन ललित निबंधों में यह ऊर्जा सर्वत्र परिलक्षित होती है। ललित निबंध जीवन के वृहद् आशयों से परिपूर्ण विधा है। इस विधा में आधुनिक भारतीय जीवन-दृष्टियों को परंपरा के परिप्रेक्ष्य में परखा गया है।

डॉ. श्यामसुंदर दुबे के ललित निबंधों में परंपरा और आधुनिकता का प्रेरणामय अनुबंध है। प्रस्तुत निबंध में वे पीछे छूटती परंपराओं को अपनी स्मृतियों में अनुभव करते हैं और उनसे अपने वर्तमान को अधिक सुखद और सशक्त बनाना चाहते हैं। वे यद्यपि परंपराओं के प्रति भावप्रवण हैं, किंतु वे परिवर्तन की प्रकृति से भी परिचित हैं, अत: उन्होंने परंपराओं की प्रासंगिकता को अपने इस निबंध में युगानुकूल ढंग से प्रस्तुत किया है। इस बदलते परिवेश में वे व्यक्ति के आचरण और उसकी आत्म-चेतना से फूटते प्रकाश में ही जीवन की गरिमा और उसकी उदात्तता को प्राप्त करने हेतु संकल्पित हैं, सृजनरत हैं।

भौतिक जीवन की भागदौड़ में पड़ा मनुष्य आज जब संवेदनहीनता का शिकार बन रहा है तब उसे संवेदनापूरित करने के लिए दुबे जी ने अपने इस निबंध में स्पष्ट किया है कि मनुष्य को अपने भीतर खोए बचपन की निरंतर तलाश करते रहना चाहिए। बचपन की भावनाएँ और संवेदनाएँ यदि हमारे भीतर सुरक्षित रहती हैं तो हम सदैव संवेदना के आत्मीय संसार में जीवित रहते हैं। बुद्धि और संवेदना का स्वस्थ समन्वय ही जीवन के सौन्दर्य को प्रकट करता है।

संवेदनशीलता से सृजन का संकल्प फूटता है। सृजनशीलता ही मनुष्य के भीतर के अजस्त्र चेतना-प्रकाश को प्रकट करने में समर्थ होती है। निबंधकार ने इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है, ''आदमी का आचरण, आदमी का शील, आदमी का श्रम, आदमी का विवेक और आदमी की भावना जिसे छू ले वह प्रकाशित हो जाए।'' निबंधकार के इन शब्दों से यह व्यक्त होता है कि जीवन के प्रति आस्थावान व्यक्ति न तो कभी पराजित हो सकता है और न ही कभी दुर्बल पड़ सकता है। निरंतर आस्थाहीन होते समय में ऐसी ही आस्थाशील प्रकाश-चेतना की आवश्यकता है। हमारा श्रम और हमारा आचरण ही हमें संघर्ष से जूझने की शक्ति देता है।''

प्रस्तुत निबंध में गाँव-घर की स्मृतियों के विभिन्न बिम्ब प्रस्तुत किए गए हैं। विचार और भाव की समन्वित शक्ति से यह निबंध अपनी रचनात्मकता में गद्य को भी काव्यात्मक स्तर पर प्रतिष्ठित करता है। लोकानुभूतियों और ग्रामीण परिवेश के अनेक प्रसंग निबंध को सहज बोधगम्य बना देते हैं। लोक बोली के अनेक शब्दों से परिचित कराता यह निबंध भाषा की प्रवाहमयता और उसकी प्रांजलता को भी प्रकट करता है। आत्माभिव्यंजना प्रधान यह निबंध व्यास शैली और उद्धरण शैली का समन्वित स्वरूप है।

तिमिर गेह में किरण-आचरण

बहुत दिनों बाद घर लौटा था। दीवारों पर वर्षा ने ऊबड़-खाबड़ चतेवरी अंकित कर दी थी। दरवाजे के सामने वाले चबूतरे पर गौखुरों की रूदन-खूँदन से अटपटी वर्णमाला लिख गई थी। घर का समूचा नाक-नक्शा ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे अतीत के प्रहारों को झेलते-झेलते वह झुर्रियों के इतिहास में बदल गया हो। मैं जो ताला लगाकर गया था, उसकी छाती पर जंग जमकर बैठ गई थी। किवाड़ों पर मकड़ियों के जालों में उलझी-पुलझी धूल हाथ लगते ही उड़कर चेहरे पर आ गई। घर क्या दीवारों, लौह-लंगर और छानी-छप्पर का ही नाम होता है ? तब मैं जिस घर के सामने खड़ा था, वह मेरा घर ही होना चाहिए। किन्तु ऐन वक्त पर कुछ-कुछ मैं भावुक हो उठता हूँ। यहाँ, इन्हीं दीवारों में कहीं मेरा बचपन हिलबिलान हुआ है। मेरी किलकारियाँ और रोदन, मेरा क्रोध और मेरा ममत्व इसी के भीतर किस कोने में अटके हैं? माता-पिता और बहिनों की आत्मीयता दरवाजों के भीतर से हुमकती-सी लगती है। मेरा अतीत ढोता यह घर, जिसका ताला खोलने में ही मुझे आधा घंटा लग गया, मेरे सामने खुला पड़ा था। घर नहीं खुला था, लगा कि जैसे ताले के साथ ही मेरे भीतर कुछ खुलता जा रहा है।

एक कोई चाबी मेरे मन के भीतर घूम रही थी- गाँव और घर के कुंदों में फँसती-उलझती। वे सगुन-साध, वे तीज-त्योहार, वे बड़े-बूढ़े, वे गाय-बछेरू, वे ढोर-डांगर, वे शरद् की संध्याएँ जिनमें गौरज उड़ाती गलियाँ आत्मीय ऊष्मा से भर उठती थीं। घंटियों की वह टनटनाहट और शंख-घड़ियालों की मिली-जुली वह सुरलहरी, जिससे समूचा गाँव एक वानस्पतिक उल्लास और पूजा-भाव से स्पंदित हो उठता है। कउड़े की आग के ताप से दिपदिपाते चेहरों की प्रसन्नता, अंधेरों में भी खनक जाती है। ज्वार-बाजरा के वे खेत जो डांग की सघनता रचते थे- मेरे आसपास अपनी निबिड़ता में रूपायित हो जाते हैं। छोटी-छोटी चीजों को पा लेने की व्याकुल प्रसन्नता मुझे छूने लगती है। खेत में एक पकी कचरिया को ढूँढ लेना ही परमसुख की तलाश बन जाती थी। वह सुख बिसर ही गया है। आल-जाल और जंजाल में फँसा मेरा मन धीरे-धीरे सुख के स्वाद से वंचित हो गया है। बचपन का कचैलापन जिस सचाई में जीता है, उसे हम भले स्वप्नशीलता कहें, लेकिन वह है बहुत खरा यथार्थ! बचपन के खरे और करारे अनुभव ताजी और पहलौटी अनुभूति

के कारण स्मृति में सदैव घर किए रहते हैं। धीरे-धीरे मन का पानी उतर जाता है। मन स्वाद के मामले में भोथरा जाता है- हम जड़ होते जाते हैं। केवल बचपन की वस्तुओं से टकराकर ही हम कभी-कभी उस सुख-बिन्दु की प्रभाव-परिधि में आ जाते हैं।

चीजें ही बदल रही हैं तो बचपन को पाना कठिन होता जाता है। जिन हलों के साथ टिप्पे की टिटकारें सुनी थीं, वे हल चूल्हे की आग बन गए। फटफटाते ट्रैक्टर खेतों की छाती चीर रहे हैं। तालाब-जैसे भरे बंधान ग़ायब हैं, बरसात ही कम हो रही है तो कहाँ से भरें खेत ? धरती का पेट चीरकर पानी खींचा जा रहा है। भभकती सिंचाई-मशीनें हड़बड़ा रही हैं। झकझकाती बिजली गाँव को चौंधिया रही है- टिमटिमाते दीयों की रोशनी का अता-पता नहीं है। न ढोर न बछेरू और गौचर-भूमि ग़ायब है। न कउड़े, न लोग! एक ज़बर्दस्त शून्य गाँव की छाती पर पसरा है। चोरी, डकैती, मुकदमा ने गाँव की चौपालें तोड़ दी हैं। रामधुनों और भजनों के ढोल-मंजीरें मद्धिम पड़ गए हैं। ट्रांजिस्टर और टीवी जो आ गए हैं। किसी को चिंता नहीं कि हिलने-मिलनेवाली आत्मीयता इसी तरह खोती गई तो आदमी के भीतर की भावना-नदी का क्या होगा? सब पानी बाँट रहे हैं। सब अपने-अपने खेत सींचने में लगे हैं। लेकिन वही ढाक के तीन पात! अंत में कुछ बचता नहीं है। इज्जत-आबरू दाँव पर है। राजनीति ने ऐसा हड़कंप मचाया है कि तीन घरों का गाँव भी तीन पार्टियों में बँट गया है। यह बँटवारा कौन करा रहा है ?

मुझे लगा मैं किसी अँधेरी सुरंग में आकर फँस गया हूँ। सचमुच दरवाजा खोला तो खड़बड़ाता-सा भाराक्रांत अँधेरा सामने फैला था। चूहों और छिपकलियों की भागदौड़ में अँधेरा ध्वनित हो रहा था। इस कर्कश अँधेरे में धँसने के लिए ही तो मैं आया हूँ। गाँव में भी ऐसा अँधेरा समाया है। उजाले के प्रचार के बीच का अँधेरा बड़ा खतरनाक होता है। किरण तक नहीं फूट पा रही है। कैसे लाया जाएगा यहाँ उजाला ? कौन काटेगा इस अंधकार को ? मैं अँधेरे में कैद हूँ। स्मृतियों के सहारे प्रकाश को खोजता हूँ। हवा का एक झोंका आया- पूरा कमरा सिहर उठा। रोशनदान से एक उजास झाँकी। आले में कुछ पीला-पीला-सा प्रकाश दिखा। पिछली बार जब घर छोड़ा था, तब गेहूँ के कुछ दाने आले में छूट गए थे। इस बरसात में वे अँकुराकर बड़े-बड़े हो गए हैं। हलदिया पीलापन ऊर्ध्वमुखी होकर अंधेरे में दिपदिपा रहा था। मुझे लगा कि प्रकाश जीवन का ही दूसरा नाम है। मिट्टी के दीपक और बिजली के लट्टू जिस प्रकाश को विकीर्ण करते हैं, वह तो प्रकाश का छायाभास है।

असल प्रकाश तो हमारे जीवन में छिपा हुआ है- सृजन का प्रकाश! आदमी का आचरण, आदमी का शील, आदमी का श्रम, आदमी का विवेक और आदमी की भावना जिसे छू लें, वह प्रकाशित हो जाए। बड़े-बड़े अँधेरों को तराशकर ये प्रकाश-निर्झर बहा दें। जवारों जैसे पीताभ गेहूँ के पौधे क्या यह संदेश नहीं देते कि सृजन की यात्रा कभी रुकती नहीं ? उसे अँधेरे बंद कमरों में भी नहीं रोका जा सकता। घर के भीतर अब मैं आश्वस्त होकर खड़ा हूँ- एकाकी, इस वीराने में सृजन के प्रकाश का सुख लेता हुआ। पिताजी ने घर के इसी कोने में एक बार कहा था- 'जीवन बहुत सरल नहीं है। मेहनत और ईमानदारी ही ऊर्जा बढ़ाते हैं। लाख अँधेरे आएँ, लाख आपत्तियाँ आएँ, तुम यदि अपने प्रति आस्थावान्, निष्ठावान् रहोगे, तो स्वयं प्रकाशित होकर दूसरों को भी प्रकाशित कर सकोगे' उस दिन दीपावली थी। मिट्टी के दीपकों की कतारें जगमगा उठी थीं। उन्होंने कहा था- 'बस इसी तरह जगमगाओ। यदि दूसरे प्रकाशित न हो पा रहे हों, तो उन्हें अपनी ज्योति का स्पर्श दो; वे भी तुम्हारे समान खिल जाएँगे।'

मैंने माचिस की तीली जलाई। रोग़न का एक कसैला धुआँ समूचे घर में भर गया। तीली फक्क-फक्क करके बुझ गई। 'अब जलाओ दीया... करो प्रकाश' जैसे घर का अँधेरा मेरे ऊपर हँस रहा था। मुझे लगा हमारे भीतर की सृजन-चेतना समाप्त होती जा रही है। हिंसा, प्रतिहिंसा, स्वार्थ, छल, फरेब, दगाबाज़ी न जाने क्या-क्या हमारे भीतर डेरा डालकर

घुप्प अँधेरे में मकड़जाल बुन रहे हैं। मन के इस अँधेरे में भटकते हम एक-दूसरे को लहूलुहान करने पर तुले हैं। इस अँधेरे को दूर करके ही हम मानवता के प्रकाश को फैला पाएँगे; तभी दीये भी हमारे लिए शाश्वत प्रकाश-केन्द्र बन सकेंगे।

मैंने झाड़ू उठाई और घर के ओनों-कोनों में लगे जाले साफ करने लगा। अब मुझे अँधेरे से डर नहीं लग रहा था। क्या हुआ जो माचिस की तीली नहीं जली ? मेरे हाथ की झाड़ू भी प्रकाश बिखेरने लगी थी.... और सैकड़ों तीलियाँ जैसे मेरे आसपास जल उठी थीं।

अभ्यास

अति लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. लेखक का बचपन कहाँ गुम हो गया है ?
2. गाँव की संध्या में पूजा भाव किन ध्वनियों में प्रकट होता है ?
3. खेत में किस चीज को ढूँढ लेना परम सुख की प्राप्ति जैसा था ?
4. घर खुलते ही लेखक को कैसा लगने लगा था ?

लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. बचपन के अनुभव, स्मृति में क्यों स्थायी होते हैं ?
2. उन तीन पारंपरिक चीजों के नाम लिखिए जो गाँव के जीवन से गायब हो रही हैं।
3. आले में गेंहूँ के दानों के अंकुरित होने को लेखक ने जीवन की किस प्रेरणा से जोड़ा है ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

1. लेखक ने जीवन में प्रकाश को किन-किन संदर्भों में प्रकट किया है ?
2. स्वयं प्रकाशित होकर दूसरों को प्रकाशित करने की क्षमता मनुष्य में किन विशेषताओं से आती है ?
3. लेखक को अपने गाँव लौटने पर क्या-क्या परिवर्तन दिखाई दिए ?
4. लेखक ने घर का वास्तविक रूप किन शब्दों में व्यक्त किया है ?
5. **निम्नलिखित गद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए -**
    1. दीवारों पर वर्षा ने ..... बदल गया हो।
    2. मेरी किलकारियाँ ..... जा रहा है।
    3. असल प्रकाश ..... नहीं रोका जा सकता।
    4. मुझे लगा हमारे भीतर की ..... केन्द्र बन सकेंगे।
    5. जीवन बहुत सरल ..... कर सकोगे।

भाषा अध्ययन

1. **निम्नलिखित शब्दों के हिन्दी मानक रूप लिखिए -**

   उजास, कसैला, किवाड़, चतेवरी

2. **निम्नलिखित शब्दों के दो-दो पर्यायवाची शब्द लिखिए -**

   निर्झर, कर्कश, प्रकाश, उल्लास

3. **निम्नलिखित वाक्यों को शुद्ध कीजिए -**

   1. उसकी आयु बीस वर्ष है।
   2. गुरु के ऊपर श्रद्धा रखनी चाहिए।
   3. यहाँ केशरिया दही की लस्सी मिलती है।
   4. भाषा का माधुर्यता बस देखते ही बनती है।

ध्यान दीजिए -

- तीली **फक्क-फक्क** करके बुझ गई।
- वे **सगुन-साध** वे **तीज-त्योहार,** वे **बड़े-बूढ़े**

वे **गाय बछेरु,** वे शरद की संध्याएँ जिनमें गौरज उड़ाती गलियाँ आत्मीय ऊष्मा से भर उठती थी।

हलदिया पीलापन ऊर्ध्वमुखी होकर अंधेरे में **दिप दिपा** रहा था।

उपर्युक्त रेखांकित शब्दों पर ध्यान दीजिए। पुनरुक्त शब्दों में एक ही शब्द के अतिरिक्त अपूर्ण, प्रति ध्वन्यात्मक और विलोम शब्द भी आ सकते हैं। इसलिये पुनरुक्त शब्दों को चार श्रेणियों में रखा जा सकता है-

1. **पूर्ण पुनरुक्त शब्द -** जहाँ किसी शब्द (पद) की एक से अधिक बार आवृत्ति हो। उदाहरण - फक्क-फक्क, झेलते-झेलते।
2. **अपूर्ण पुनरुक्त शब्द -** जहाँ शब्द युग्म में दूसरी इकाई पहली इकाई से बना कोई रूप धारण कर आती है। उदाहरण - आधा-अधूरा, बड़े-बूढ़े।
3. **प्रति ध्वन्यात्मक शब्द -** इसमें दूसरा शब्द पहले की प्रतिध्वनि होता है। उदाहरण - दिप-दिपा, खाना-वाना।
4. **भिन्नात्मक शब्द -** इस प्रकार के शब्द युग्म में प्रत्येक शब्द भिन्न अर्थ रखने वाला होता है। उदाहरण - गाय-बछेरु,

और भी समझिए -

शब्द युग्म में दो शब्दों के बीच योजक चिन्ह का प्रयोग होता है। उदाहरण - कुछ-कुछ, फँसती-उलझती

4. **निम्नलिखित शब्द युग्मों में से पूर्ण पुनरुक्त, अपूर्ण पुनरुक्त, प्रति ध्वन्यात्मक शब्द और भिन्नात्मक शब्दों को पृथक्-पृथक् लिखिए -**

तीज-त्योहार, छानी-छप्पर, आल-जाल, छोटी-मोटी, प्रचार-प्रसार, उर्दू-फारसी, खेलते-खेलते

5. **दिए गए वाक्यों का भाव विस्तार कीजिए -**

1. कउड़े की आग के ताप से दिपदिपाते चेहरों की प्रसन्नता अँधेरों में भी खनक जाती है।
2. जवारों जैसे पीताभ गेहूँ के पौधे क्या यह संदेश नहीं देते कि सृजन की यात्रा कभी रुकती नहीं ?

पढ़िए और समझिए

भाषा विचारों के आदान-प्रदान और भावों की अभिव्यक्ति का साधन है। भाषा ध्वनि संकेतों का एक समूह, एक अभ्यास एक व्यवस्था है। बोली विभाषा बनती है और विभाषा भाषा।

प्रयोग की दृष्टि से भाषा के विविध स्तर -

बोली - यह भाषा का सबसे अधिक सीमित और छोटा रूप है। किसी छोटे क्षेत्र में स्थानीय व्यवहार में प्रयुक्त होने वाली भाषा का रूप बोली कहलाता है। आंचलिक उपन्यासों, नाटकों और कहानियों में स्थानीय वातावरण उत्पन्न करने के लिए स्थान-स्थान पर इनका प्रयोग किया जाता है। अतएव क्षेत्र-विशेष में साधारण सामाजिक व्यवहार में आने वाला बोलचाल का भाषा रूप बोली है। बोली उन्नति करके विभाषा बनती है।

''यहाँ, इन्ही दीवारों में कहीं मेरा बचपन हिलबिलान हुआ है। मेरी किलकारियाँ और रोदन मेरा क्रोध और मेरा ममत्व इसी के भीतर किस कोने में अटके हैं? माता-पिता और बहिनों की आत्मीयता दरवाजों के भीतर से हुमकती-सी लगती है।''

उपर्युक्त उदाहरण को ध्यान से पढ़िए। इसमें 'बुंदेली' शब्दों का प्रयोग किया गया है।

विभाषा - इसे उपभाषा भी कहा जाता है। विभाषा का क्षेत्र भाषा से कम व्यापक एवं बोली से अधिक विस्तृत होता है। एक प्रदेश में अथवा प्रदेश के भाग में सामान्य बोल-चाल, साहित्य आदि के लिए प्रयुक्त होने वाली भाषा को विभाषा कहते हैं। इसे क्षेत्रीय भाषा भी कहते हैं। पूर्वी हिन्दी, पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, बिहारी एवं गढ़वाली आदि विभाषाएँ हैं।

मातृभाषा - माँ द्वारा बोली जाने वाली भाषा शिशु सर्वप्रथम सीखता है। जिस क्षेत्र में जो भाषा बोली जाती है उस क्षेत्र की वह भाषा व्यापक रूप से मातृभाषा कही जाती है। वास्तव में मातृभाषा पालने की भाषा है। जो माता-पिता, परिवार और स्थानीय परिवेश में बोली जाने वाली भाषा होती है। यथा हिन्दी क्षेत्र की हिन्दी, बंगाल क्षेत्र की बांग्ला, पंजाब क्षेत्र की पंजाबी आदि।

6. **मातृभाषा की विशेषताएँ लिखिए।**

योग्यता विस्तार -

1. गाँव में प्रचलित लोक परंपराओं को जानिए और समझिए।
2. गाँव जाकर वहाँ के विभिन्न उपकरणों और घरेलू घटकों के आंचलिक नामों की सूची बनाइए।
3. गाँवों में गाए जाने वाले लोकगीतों व प्रचलित लोककथाओं को याद कीजिए और उनका मातृभाषा में अनुवाद कीजिए।
4. अपने परिवेश में बोली जाने वाली भाषा के शब्दों का संकलन कीजिए।

शब्दार्थ

तिमिर = अंधकार
चतेवरी = चित्रकारी
कउड़ा = अलाव
गौखुरो = गाय के खुर
लौह-लंगर = लोहा लंगर
छानी-छप्पर = छाजन (घास फूस की)
गौरज = गाय के खुरों से उठने वाली धूल
उल्लास = प्रसन्नता
निबिड़ता = सघनता
पहलौटी = पहला
भाराक्रांत = भार से दबा हुआ
पीताभ = पीली आभा वाला
उजास = उजाला
कर्कश = कठोर
उर्ध्वमुखी = ऊपर मुख किए हुए
विकीर्ण = फैलाना
हिलबिलाना = खो जाना

❋ ❋ ❋

तात्या टोपे

लेखक परिचय :

डॉ. सुरेश शुक्ल
'चन्द्र'

डॉ. सुरेश शुक्ल 'चन्द्र' का जन्म उन्नाव (उ.प्र.) जिले के राजापुर गढ़ेवा ग्राम में आठ फरवरी सन्1936 ई. को हुआ। इन्होंने एम.ए. और पी-एच.डी. तक शिक्षा प्राप्त की। डॉ. चन्द्र ने अब तक सोलह नाटक, चार एकांकी संग्रह, दो कविता संग्रह, एक उपन्यास, आत्मकथा तथा समीक्षात्मक ग्रंथ लिखे हैं। डॉ. चन्द्र मूलतः नाटककार हैं। इनके द्वारा लिखे एकांकियों में 'स्वप्न का सत्य' 'टूटते हुए' , 'बहुरूपिए', 'मुखौटे बोलते हैं', 'गृहकलह', 'कायाकल्प', 'समर्पण' 'प्रायश्चित' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

साठोत्तरी हिन्दी नाटककारों में इनका प्रमुख स्थान है। इन्होंने अपने नाटकों के विषय इतिहास और अपने समसामयिक परिवेश से चुने हैं। इनके एकांकी कथ्य और शिल्प, दोनों दृष्टि से विविधता पूर्ण हैं। इन्होंने समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, अनैतिकता और अंधविश्वास पर व्यंग्यात्मक प्रहार किए हैं।

डॉ. चन्द्र ने अपने एकांकियों में अनेक प्रयोग किए हैं। इन्होंने मंचीय एकांकी, स्ट्रीट प्ले, रेडियो एकांकी, मोनोलॉग आदि अनेक नाट्य शैलियों में अपनी नाट्य रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। इनके एकांकियों की भाषा सरल, अभिनेय और मंचीय है। वाक्य विन्यास बोधगम्य तथा सरल है। भाषा प्रवाह पूर्ण है। संवाद, कथ्य को आगे बढ़ाने में समर्थ हैं और कौतूहल निर्मित करते चलते हैं।

वृहत्तर मानव मूल्यों की स्थापना एवं विश्व-कल्याण की भावना को लेकर चलने वाले डॉ. चन्द्र अपने समकालीन नाटककारों में अलग पहचान रखते हैं तथा इसी विशेषता के कारण समकालीन नाट्य परिदृश्य में अपनी अमिट छाप छोड़ने में समर्थ हैं।

केन्द्रीय भाव :

डॉ. शुक्ल ने प्रस्तुत एकांकी में तात्या टोपे के जीवन से संबंधित एक घटना को उभारा है। तात्या टोपे प्रथम स्वतंत्रता संग्राम (सन् 1857) के प्रमुख सेनानायकों में से थे। उनकी वीरता और देशभक्ति ने अंग्रेजों को हिलाकर रख दिया था। अंग्रेजों द्वारा की गई अनेक व्यूह रचनाओं के बावजूद भी वे अंत समय तक साहस से संघर्ष करते रहे। इसी से उनकी रण कुशलता और सामरिक बुद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है।

इस एकांकी की कथावस्तु तात्या टोपे के जीवन की क्रान्तिकारी भूमिका से संबंधित है। अंग्रेजों से लोहा लेते हुए वे अपने साहस, कूटनीति और रण कुशलता का परिचय देते रहे। अस्वस्थ होने के कारण वे राजा मानसिंह के संरक्षण में रहे, किन्तु अंग्रेजों के षड्यंत्र से जब राज-महिलाओं का अपहरण हो जाता है तो मानसिंह भी अंग्रेजों के सामने झुक जाता है। यहाँ बहुत विडम्बना है कि मानसिंह जो किसी भी शर्त पर तात्या टोपे को अंग्रेजों को सौंपने के लिए तैयार नहीं था, राजमहिलाओं की मुक्ति के लिए विचलित होकर वह क्या से क्या कर बैठता है। तात्या को अंग्रेजों द्वारा बंदी बना लिया जाता है और स्वतंत्रता की बलिवेदी पर उन्हें फाँसी दे दी जाती है।

एकांकीकार ने इसमें अंग्रेजों की दमननीति की ओर संकेत किया है और इसके विरोध में तात्या टोपे के भीतर निहित राष्ट्रभक्ति का व्यापक चित्रण किया है। प्रण पालक राजा मानसिंह निडर और साहसी होते हुए भी अंग्रेजों के षड्यंत्र में फँस जाते हैं और देश भक्त तात्या टोपे की रक्षा नहीं कर पाते हैं।

इस एकांकी के संवाद संप्रेषणीय हैं। छोटे-छोटे वाक्यों में गहन अर्थ का समायोजन किया गया है। यह एकांकी मंचीय दृष्टि से सफल एकांकी है।

तात्या टोपे

पात्र

सर रार्वट्स नेपियर	:	मध्य भारत की ब्रिटिश-सेना का प्रधान अधिनायक
मेजर मीड	:	घुड़सवार सेना का सेनापति
मानसिंह	:	नरवर का राजा
विजयसिंह	:	मानसिंह का सेनापति
तात्या टोपे	:	सन् 1857 की क्रांति का वीर सेनानी
अजीमुल्ला खाँ	:	तात्या का सहायक
ज्योतिषी	:	ज्योतिषी वेश में क्रांतिकारी
साधु	:	साधुवेश में क्रांतिकारी

गुप्तचर ,प्रहरी ,प्रतिहारी और चर

काल	:	सन् 1859

पहला दृश्य

स्थान	:	नरवर के समीप अंग्रेजों का फौजी शिविर
समय	:	प्रातः साढ़े सात बजे

(सर रावर्ट्स नेपियर और मेजर मीड)

नेपियर : तात्या का पीछा करते हुए एक वर्ष हो गया, पर हम लोग उसको पकड़ने में सफल न हो सके।

मीड : साहब ! उसमें बड़े-बड़े कमाल और हुनर हैं, उसे पकड़ना आसान नहीं।

नेपियर : फिर भी सरकार की आज्ञा मानना हमारा फर्ज है। किसी-न-किसी तरह तो उसे पकड़ना ही होगा।

मीड : साहब ! उसे पकड़ने के लिए अपनी सैनिक-शक्ति में वृद्धि करनी होगी।

नेपियर : कहाँ तक वृद्धि की जाए ? सेना की सात टुकड़ियाँ तो निरन्तर उसका पीछा करने में लगी हैं। क्या एक छोटे से क्रान्तिकारी के पीछे सेना की सात टुकड़ियों का लगना आश्चर्य की बात नहीं है ?

मीड : है, पर तात्या छोटा होते हुए भी अपने में असीम है। हम लोग पीछा करते-करते निराश हो गए हैं। उसमें जादू की-सी करामात है। कभी तो उसके पास हजारों सैनिक रहते हैं; क्रान्तिकारियों की सेनाएँ अचानक आ जाती हैं; तोपों और शस्त्रों की गड़गड़ाहट से हम लोग भयभीत हो जाते हैं। कभी एक छोटी-सी टुकड़ी लिए ही सामने से निकल जाता है।

नेपियर : तात्या, सच्चा देशभक्त है, मीड साहब ! वह जिधर से निकल जाता है, वहीं के लोग उसके सहायक हो जाते हैं। सुना है, उसकी वाणी में महान् शक्ति है। वह जहाँ बोलता है, क्रान्ति की आग फूँक देता है।

मीड : वाणी ही में नहीं, साहब ! शारीरिक शक्ति और बुद्धि से भी वह अपराजेय है। उसकी सैन्य-संचालन शक्ति तो मुझे चकाचौंध में डाल देती है। गुप्तचरों से ज्ञात होता है, वह समीप ही है और जब हम निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचते हैं तो वह पचासों मील दूर निकल जाता है। उसमें फुरती तो बिजली से भी अधिक है। उसे पकड़ना टेढ़ी खीर है।

नेपियर : मैं भी यह मानता हूँ, पर निराश होने से तो काम न चलेगा। कोई-न-कोई उपाय तो निकालना ही होगा।

मीड : मैं निराश नहीं होता, आप जो भी आज्ञा दें, सर-आँखों पर।

नेपियर : अब तो सरकार ने उसको पकड़ने के लिए दस हजार रुपये का इनाम भी घोषित कर दिया है।

मीड : दस हजार रुपये उसके सामने कुछ भी नहीं हैं, साहब! वह वीर धन्य होगा, जिसको यह यश हाथ लगे। उसकी शोहरत ही उसके लिए बहुत बड़ा इनाम होगा।

(गुप्तचर का प्रवेश)

गुप्तचर : (सैल्यूट मारकर) साहब! अभी पता लगा है कि तात्या आजकल नरवर के राजा मानसिंह के संरक्षण में है।

नेपियर : मानसिंह ने उसे अपने संरक्षण में क्यों लिया ?

गुप्तचर : मानसिंह तात्या का विश्वसनीय मित्र है। इधर एक वर्ष से दौड़ते-दौड़ते तात्या थक गया था और उसका स्वास्थ्य भी बहुत बिगड़ चुका था। इसलिए उसे कुछ दिन के लिए मानसिंह के संरक्षण में जाना पड़ा।

नेपियर : लेकिन मानसिंह को यह ज्ञात नहीं है कि तात्या राजद्रोही है और उसको संरक्षण में लेना सरकार को चुनौती देना है।

मीड : सब कुछ ज्ञात है। भारत का बच्चा-बच्चा तात्या की क्रान्ति से परिचित है। लेकिन मानसिंह क्षत्रिय है और अपने देश तथा मित्र की रक्षा करना अपना धर्म समझता है।

नेपियर : ऐसी स्थिति में हमें मानसिंह के पास अपना प्रस्ताव भेजना चाहिए।

मीड : मानसिंह कभी तात्या को देने को तैयार न होगा। उससे तात्या को सहज नहीं छुड़ाया जा सकता।

नेपियर : फिर क्या करना होगा ?

मीड : मानसिंह को पक्ष में लाने के लिए कोई-न-कोई षड्यन्त्र रचना ही होगा क्योंकि बिना मानसिंह की सहायता के तात्या का पकड़ा जाना सम्भव नहीं है।

नेपियर : कैसे भी हो तात्या को जिन्दा या मुरदा अपनी हिरासत में लेना है। **(प्रस्थान)**

दूसरा दृश्य

स्थान : राजा मानसिंह के महल का एक प्रकोष्ठ

समय : अपराह्न चार बजे

(राजा मानसिंह और विजयसिंह)

मानसिंह : तात्या साहब के रहने की समुचित व्यवस्था हो गई विजयसिंह ?

विजयसिंह : हाँ, महाराज! पाड़ौन के जंगल में एक गुप्त स्थान है, वहीं उनके निवास की व्यवस्था कर दी गई है तथा सुरक्षा के लिए गुप्तचर और सैनिक भी नियुक्त कर दिए गए हैं।

मानसिंह : उनकी सुरक्षा का विशेष ध्यान रखना होगा। उनको पकड़ने के लिए सरकार अपनी पूरी शक्ति लगा रही है।

विजयसिंह : पाड़ौन के जंगल में अपने पर्याप्त सैनिक पहुँच चुके हैं।

मानसिंह : हम सबको बड़ी सतर्कता से काम करना होगा, सेनापतिजी! तात्या की रक्षा करना अपना प्रथम कर्त्तव्य है। तात्या भारत माँ के सच्चे सपूत हैं। ग्वालियर-पराजय के बाद जब सभी राजा क्रांति का रास्ता छोड़ चुके थे, अकेले तात्या ही थे जो स्वतंत्र रूप से छापा मार आक्रमणों द्वारा अंग्रेजो को तबाह करते रहे- उनके हजारों सैनिकों को मृत्यु के घाट उतारते रहे। ग्वालियर पराजय के पहले भी तात्या ने कई युद्धों में अंग्रेज फौजों को करारी मात दी। अभी भी उनसे भारत को बहुत-सी आशाएँ हैं। इस वीर सेनानी की रक्षा तन, मन, धन की बाजी लगाकर करनी होगी।

विजयसिंह : महाराज! उनकी रक्षा के लिए हम लोग पूरी तरह प्रयत्नशील हैं।

मानसिंह : अब तात्या साहब के स्वास्थ्य के क्या समाचार हैं ?

विजयसिंह : अब तो कुछ सुधार हो रहा है। उनका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ चुका था महाराज!केवल अस्थिपंजर मात्र ही शेष था।

मानसिंह : अगर ऐसा न होता तो वह संरक्षण में रहने वाला वीर नहीं था। जब उनके पास बिल्कुल सैनिक शक्ति नहीं रही और स्वास्थ्य भी बिगड़ गया तब सभी ओर से लाचार होकर ही उन्होंने अपना संरक्षण स्वीकार किया है। उनकी वीरता, साहस और कौशल सराहनीय है।

(प्रहरी का प्रवेश)

प्रहरी : (महाराज को सिर झुकाकर) महाराज! सरकारी घुड़सवार सेना के अधिनायक मेजर मीड आपसे मिलना चाहते हैं।

मानसिंह : आने दो।

(प्रहरी का जाना, मेजर मीड का प्रवेश)

मीड : महाराज, सुनने में आया है कि तात्या साहब ने आपके यहाँ संरक्षण लिया है ?

मानसिंह : संरक्षण नहीं, वह आजकल मेरे आतिथ्य में हैं। तात्या साहब मेरे खास मित्रों में से हैं। बहुत अनुरोध के बाद उन्होंने मेरे यहाँ कुछ दिन रहना स्वीकार किया है।

मीड : लेकिन आपको ज्ञात होगा कि तात्या राजद्रोही है और उसे पकड़ने के लिए सेना की सात टुकड़ियाँ एक साल से उसके पीछे लगी हुई हैं।

मानसिंह : ज्ञात है, पर जब तक वह मेरे आतिथ्य में हैं तब तक उन्हें नहीं पकड़ा जा सकता।

मीड : अच्छी तरह सोच लीजिए, मानसिंह जी! राजद्रोही को रखना सरकार से लोहा लेना है। तात्या को रखना आपके लिए खतरे से खाली नहीं है।

मानसिंह : मैं मानता हूँ, पर अपने अतिथि की रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है। मैं उसके लिए अपना सभी कुछ उत्सर्ग कर सकता हूँ।

मीड : कोरी भावुकता में न बहिए, मानसिंहजी! मैं आपके हित में कह रहा हूँ, तात्या को मेरे हवाले कर दीजिए। इससे सरकार आपको बहुत-सा पारितोषिक देगी। राजकर से आप मुक्त कर दिए जाएँगे और आपका राज्य भी एक स्वतन्त्र स्थायी राज्य बना दिया जाएगा।

मानसिंह : मैं इन प्रलोभनों की अपेक्षा अपने कर्त्तव्य को अधिक महत्व देता हूँ, मीड साहब! मैं तात्या साहब को कभी आपके हवाले नहीं कर सकता।

मीड : लेकिन इसका परिणाम आपने सोचा है ?

मानसिंह : हाँ, इस नश्वर शरीर से मुक्ति, और यही क्षत्रिय के लिए वरदान है।

मीड : आपका सम्पूर्ण राज्य विनष्ट हो जाएगा।

मानसिंह : एक देशभक्त की रक्षा में उत्सर्ग होना मेरे लिए स्वाभिमान का विषय होगा।

मीड : अच्छा, मैं जाता हूँ, तैयार रहना।

(मीड का आवेश में जाना)

मानसिंह : सेनापति! सेना की समुचित व्यवस्था करो।

विजयसिंह : अपने सभी सैनिक पहले से तैयार हैं। लेकिन सरकार की विशाल सेना के सामने अपने थोड़े-से सैनिक क्या कर सकेंगे ?

मानसिंह : कैसे भी हो मित्र की रक्षा तो करनी ही होगी।

(प्रतिहारी का प्रवेश)

प्रतिहारी : धोखा, घोर धोखा, महाराज! गजब हो गया, संपूर्ण राज महिलाओं को सरकारी सैनिक पकड़ ले गए।

मानसिंह : क्या! राज-महिलाओं को सरकारी सैनिक पकड़ ले गए ?

प्रतिहारी : हाँ, महाराज!

मानसिंह : यह कैसे हुआ ? क्या वहाँ अपने सैनिक नहीं थे ?

प्रतिहारी : थे, पर धोखा दिया गया।

मानसिंह : कैसा धोखा ?

प्रतिहारी : आपके ही सगे-सम्बन्धी नारायण देव ने विश्वासघात किया। अंग्रेज अफसरों को पहले से ही ज्ञात था कि महाराज आसानी से तात्या को देने वाले नहीं। जिस समय मेजर मीड आपके पास आया था उसी समय नारायण देव महल में पहुँच चुके थे और उन्होंने महल से सभी प्रहरियों को हटा दिया था और उनके स्थान पर सरकारी सैनिक वेश बदलकर तैनात कर दिए गए थे। बहुत-से सैनिक इधर-उधर भी लगे हुए थे। मेजर मीड ने दरबार से बाहर आते ही सैनिकों को इशारा किया और बात-की-बात में सैकड़ों सैनिक महल में घुस गए, और जब तक अपने सैनिक वहाँ पहुँचे, पूरा महल खाली हो चुका था।

मानसिंह : यह तो मेरे साथ बहुत बड़ा विश्वासघात हुआ। जिस नारायण देव को मैं अपना समझता रहा, वही आस्तीन का सर्प बन गया और मेरी इज्जत धूल में मिला दी। यह घटना मेरी राजमर्यादा पर अमिट कलंक है।(मानसिंह अत्याधिक चिन्तित हो जाते हैं। प्रतिहारी का प्रस्थान)

विजयसिंह : अब हम सबको शीघ्र उद्यत हो जाना चाहिए,पर शक्ति द्वारा हम राज-महिलाओं को छुड़ाने में सफल नहीं हो सकते।

मानसिंह : क्या आशय है, सेनापतिजी ?

विजयसिंह : राज-महिलाओं का अपहरण डराने के लिए किया गया है, जिससे आप तात्या को सरकार के हवाले कर दें ।

मानसिंह : राज-महिलाओं को मुक्त कराना जरूरी है।

विजयसिंह : बिल्कुल जरूरी है लेकिन बिना तात्या को सौंपे सम्भव नही है यदि युद्ध करते हैं तो पराजय निश्चित है।

मानसिंह : तब क्या किया जाए ?

विजयसिंह : स्थिति पर गम्भीरता से विचार करना होगा।... वैसे जो भी आपका आदेश होगा मुझे शिरोधार्य है। मैं जाकर सेना का निरीक्षण करता हूँ। **(प्रस्थान)**

मानसिंह : (स्वगत) अजीब संकट की स्थिति है। पता नहीं महिलाओं पर क्या बीत रही हो ? शीघ्र कोई निर्णय लेना होगा **(प्रस्थान)**

तीसरा दृश्य

स्थान : पाड़ौन का वन

समय : प्रात: आठ बजे

(तात्या बैठे कुछ सोच रहे हैं। चर का प्रवेश)

चर : बहुत चिन्ताजनक सूचना है श्रीमन्।

तात्या : क्या हुआ ?

चर : अंग्रेजों को पता चल गया कि आप मानसिंह के संरक्षण में हैं। मेजर मीड ने मानसिंह के महल की महिलाओं का अपहरण करा लिया।

तात्या : महिलाओं का अपहरण !

चर : हाँ श्रीमन्।.....नेपियर ने मानसिंह को खबर भेजी है कि यदि तात्या को हमारे हवाले न किया गया तो महिलाओं को मृत्यु के घाट उतार दिया जाएगा। मानसिंह बहुत चिन्तित है।

तात्या : चिन्ता की बात ही है। महिलाओ को छुड़ाना जरूरी है। एक व्यक्ति के लिए अनेक महिलाओं के प्राण जाएँ यह ठीक नहीं है। इस स्थिति में मानसिंह को मुझसे राय लेनी चाहिए। ठीक है, तुम जाओ। (चर का प्रस्थान)

तात्या : (स्वगत) आज 8 अप्रैल 1859 है। एक माह हो गया यहाँ रहते हुए। अंग्रेजों को पता चल चुका है। अब यहाँ और रहना ठीक नही है।

(तात्या कुछ सोचते हुए टहलते हैं । मानसिंह का प्रवेश)

तात्या : (मानसिंह को देखकर) आइए मित्र!

मानसिंह : अब आपका स्वास्थ्य कैसा है ?

तात्या : अब मैं बिल्कुल ठीक हूँ। मैंने सुना है कि मीड ने महल की महिलाओं का अपहरण करा लिया ।

मानसिंह : हाँ, आपको सूचना सही मिली है।

तात्या : महिलाओं को शीघ्र छुड़ाने का उपाय करना होगा।

मानसिंह : क्या उपाय किया जाए ?

तात्या : मीड के शिविर पर आक्रमण किया जाय ।

मानसिंह : मेरे पास इतना सैन्य-बल नहीं है कि मैं अंग्रेजो का मुकाबला कर सकूँ।

तात्या : आप अपने सैनिक मुझे दीजिए। मैं महिलाओं को छुड़ाऊँगा।

मानसिंह : मुझे आशा नहीं है कि सफलता मिलेगी।

तात्या : मुझे पूरी आशा है क्योंकि अभी अंग्रेजों के शिविर में अधिक सेना नही है और न उन्हें किसी आक्रमण की आशंका है।

मानसिंह : यदि आपने छुड़ा भी लिया तो अंग्रेज बड़ी सेना लेकर हमारे ऊपर आक्रमण करेंगे और हमारी वैसी ही हालत होगी जैसी कानपुर, झाँसी और ग्वालियर की हुई।

तात्या : यदि अंग्रजों ने नरवर पर अधिकार कर भी लिया तो मैं उन्हे चैन से राज्य न करने दूँगा। वे कब तक नरवर में अपनी सेना लगाये रहेंगे। उनकी सेना के हटते ही मैं पुनः नरवर पर आक्रमण करूँगा। मेरे आक्रमण का क्रम बराबर जारी रहेगा।

मानसिंह : पर राज्य तो सुरक्षित न रह पायेगा।.....मैंने एक और उपाय सोचा है।

तात्या : कौन सा ?

मानसिंह : साँप मर जाये और लाठी भी न टूटे।

तात्या : कैसे ?

मानसिंह : आपके स्थान पर, किसी अन्य व्यक्ति को मीड के हवाले कर दिया जाये। आपको अंग्रेजों में कोई पहचानता नही है । वे उस व्यक्ति को ही तात्या समझ लेंगे। बस आपको यहाँ से जाने के बाद गुमनाम रहना होगा। अंग्रजों को पता न चले कि आप ज़िन्दा हैं।

तात्या : गुमनाम जीवन बिताना मेरे लिये सम्भव नहीं है और मैं यह भी नहीं चाहता कि कोई मेरी रक्षा के लिए अपने प्राण दे। मैं आपके संरक्षरण से तुरंत जाने को तैयार हूँ और मैं यहाँ से जाकर कैसे भी हो, अपनी जंग जारी रखूँगा। अंग्रेजों को चैन से नहीं रहने दूँगा।

मानसिंह : लेकिन इससे मेरी समस्या हल न होगी।

तात्या : कैसे ?

मानसिंह : अंग्रेज समझेंगे कि मैंने आपको भगा दिया। इससे महिलाएँ भी मारी जायेंगी और राज्य भी चला जायेगा ।... खैर, मैं दूसरा कोई उपाय सोचता हूँ। कुछ मित्र राजाओं से बात करता हूँ,यदि वे सहयोग देने को तैयार हुए तो फिर अंग्रेजों के शिविर पर आक्रमण करने की योजना बनाऊँगा। आप तीन दिन का समय मुझे दीजिए। मैं तीन दिन के भीतर पुनः आपके पास आता हूँ तब तक आप यहाँ रहिए। आपके इस गुप्त-स्थल का पता अभी किसी को मालूम नहीं है।

तात्या : ठीक है ।

मानसिंह : अब मैं चलता हूँ। (प्रस्थान)

चौथा दृश्य

स्थान : पाड़ौन का वन

समय : दोपहर बारह बजे

(तात्या कुछ चिन्तित से टहल रहे हैं।)

तात्या : तीन दिन हो रहे हैं, मानसिंह नहीं आए। अजीमुल्ला खाँ ने आने को कहा था, वे भी नहीं आए। (आवाज देकर) प्रहरी ! (प्रहरी का प्रवेश)

प्रहरी : आज्ञा श्रीमन !

तात्या : कोई आये तो सूचना देना अब मैं विश्राम करूँगा।

प्रहरी : जो आज्ञा श्रीमन !

(प्रहरी का प्रस्थान। तात्या जमीन पर बिस्तर लगाकर लेट जाते हैं। थोड़ी देर बाद मेजर मीड का कुछ सैनिकों के साथ दबे पाँव प्रवेश। मीड, तात्या की बगल में रखी तलवार को आहिस्ता से उठा लेता है और सैनिक को, सोते हुए तात्या को गिरफ्तार करने का इशारा करता है। सैनिक तात्या को दबोचकर, उनके हाथ बाँध देते हैं। तात्या अवाक् थोड़ी देर प्रतिरोध करते हैं। मीड ठहाका लगाकर हँसता है।)

मीड : आखिर पकड़ में आ ही गये?

तात्या : मेजर मीड, तुमने सोते हुए तात्या को पकड़ा है, जागते हुए तात्या को पकड़कर दिखाते, तो मैं समझता कि तुम वीर हो। यदि शक्ति है तो मुक्त कर दो और द्वन्द्व-युद्ध कर,सम्मानपूर्वक मुझे गिरफ्तार करो। यह कायरों जैसा कार्य, तुम जैसे सेनापति को शोभा नहीं देता। (मीड ठहाका मारकर हँसता है।)

मीड : अब तुम मुझे चकमा नहीं दे सकते।... क्या शोभा देता है, क्या नहीं, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ।...शोभा देने की बातें अपने दोस्त मानसिंह को क्यों नहीं सिखाई, जिसने तुम्हें गिरफ्तार कराया ? अब फासी के तख्ते पर चढ़कर मुझे शिक्षा देना।

तात्या : मुझे फाँसी का डर नहीं है मीड ! दुख इस बात का है कि मैं लड़ते हुए शहीद क्यों न हुआ ?

मीड : (सैनिकों से) ले चलो इसे। मैं बक-बक सुनने का आदी नहीं हूँ ।

(सैनिक तात्या को लेकर जाते हैं।)

मीड : हूँ: **(प्रस्थान)**

पाँचवाँ दृश्य

स्थान : शिवपुरी के समीप एक निर्जन स्थल

समय : सायंकाल 6 बजे

(अजीमुल्ला और ज्योतिषी का बातचीत करते हुए प्रवेश।)

अजीमुल्ला : गवाहों के ठीक से बयान भी नहीं लिये गये और जज ने तात्या को फाँसी की सजा सुना दी ।

ज्योतिषी : उसे डर था कि कहीं जनता विद्रोह न कर दे। अब शीघ्र ही तात्या को फाँसी पर चढ़ा दिया जायेगा।

अजीमुल्ला : मुझे मानसिंह की गतिविधि की थोड़ी-सी भनक मिली थी। मैं तात्या को वहाँ से हटाना चाहता था, पर मुझे उनके पास पहुँचने में थोड़ी देर हो गयी।

ज्योतिषी : मानसिंह ने बहुत गलत किया। उसे तुरंत तात्या को वहाँ से हटा देना था और अंग्रेजो से समझौता करके, तात्या को गिरफ्तार कराने के लिये मीड को लेकर गुप्त-स्थल पर आना था। तात्या को वहाँ न पाकर यह दिखाना था कि वह उनके आकस्मिक पलायन से अनजान है।

अजीमुल्ला : मानसिंह ने तात्या को धोखा दिया।

(साधु का शीघ्रता से प्रवेश)

साधु : आज 18 अप्रैल को शिवपुरी में तात्या को सरेआम फाँसी दे दी गयी। सैकड़ों की संख्या में जनता वहाँ इकट्ठी थी। मैं भी जनता के बीच में खड़ा था। मीड ने एक पेड़ के नीचे तखते का एक मंच बनवाया था। वह तात्या को लेकर उस पर खड़ा हुआ और जज का फैसला पढ़कर सुनाया। तात्या पेड़ में लटकते फन्दे को देखकर मुसकरा रहे थे। सैनिक ने तात्या की बेड़ी और हथकड़ी खोली। तात्या ने फाँसी का फन्दा खुद ही अपने गले में डाल लिया। मीड का आदेश मिलते ही जल्लाद ने तात्या के सिर पर टोप डाला और नीचे का तखता खींच लिया । तात्या का शरीर पेड़ से लटक गया। जनता सिसक-सिसक कर रोने लगी। अंग्रेजों की सेना चारों ओर लगी थी। बहुत करूण दृश्य था। मैं तुरंत वहाँ से चला आया।

अजीमुल्ला : एक वीर सेनानी हमने खो दिया। यह देश की बहुत बड़ी क्षति है।

साधु : भगवान तात्या टोपे की आत्मा को शांति दे। ओम् शान्ति:, शान्ति: शान्ति।

अभ्यास

अति लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. मेजर मीड ने तात्या टोपे को पकड़ने के लिए क्या सुझाव दिया ?
2. अजीमुल्ला किस क्रांतिकारी, देशभक्त के सहायक थे ?
3. तात्या, राजा मानसिंह के संरक्षण में क्यों गए ?
4. तात्या को किस गुप्त स्थान पर रखा गया था ?
5. राज महिलाओं का अपहरण कराने में किसका हाथ था ?

लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. मीड के शब्दों में तात्या टोपे के युद्ध-कौशल का वर्णन कीजिए।
2. राज-महिलाओं को किस लिए बंधक बनाया गया था ?
3. तात्या को बचाने के लिए मानसिंह ने क्या योजना बनाई थी ?
4. मानसिंह की योजना को तात्या ने क्यों अस्वीकार कर दिया ?
5. तात्या को सौंपने के लिए मीड ने मानसिंह को कौन-कौन से प्रलोभन दिए ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

1. एकांकी के तत्वों के नाम लिखिए। किसी एक तत्व के आधार पर तात्या टोपे एकांकी की विवेचना कीजिए।
2. 'तात्या टोपे सच्चे वीर और राष्ट्रभक्त थे।' उदहरण देकर समझाइए।
3. मानसिंह के चरित्र की तीन विशेषताएँ लिखिए।
4. ज्योतिषी ने मानसिंह के किस व्यवहार को गलत कहा है ?
5. फाँसी के फंदे को देखकर तात्या की प्रतिक्रिया को अपने शब्दों में लिखिए तथा इससे आपको क्या प्रेरणा मिलती है ?

भाषा अध्ययन

1. निम्नलिखित शब्दों के हिन्दी प्रचलित रूप लिखिए-

   शोहरत, हुनर, फर्ज, हिरासत, इनाम, मुरदा, हवाले, इशारा, जरूरी।

2. दिए गए सामासिक शब्दों का विग्रह कर समास का नाम लिखिए-

   राज-मर्यादा, देशभक्त, देशद्रोही, घुड़सवार

3. दिए गए मुहावरों का वाक्यों में प्रयोग कीजिए-

   टेढ़ी खीर होना, बाजी मारना, लोहा लेना, आस्तीन का साँप होना

4. निम्नलिखित शब्दों में से मूल शब्द, उपसर्ग तथा प्रत्यय अलग-अलग कीजिए-

असीम, समुचित, सतर्कता, प्रयत्नशील, वीरता, स्वाभिमान, आसानी, गंभीरता, सम्मान

5. निम्नलिखित वाक्यों में से साधारण, मिश्र और संयुक्त वाक्य छाँटकर लिखिए-

i गुप्तचरों से ज्ञात होता है, वह समीप है।

ii वह वीर धन्य होगा, जिसको यह यश हाथ लगे।

iii मानसिंह ने उसे अपने संरक्षण में क्यों लिया ?

iv अगर ऐसा न होता, तो वह संरक्षण में रहने वाला वीर नहीं है।

v वही आस्तीन का सर्प बन गया और मेरी इज्जत धूल में मिला दी।

vi शीघ्र कोई निर्णय लेना होगा।

ध्यान दीजिए -

सृष्टि के आदिकाल से ही नारी की महत्ता अक्षुण्ण है। नारी सृजन की पूर्णता है। उसके अभाव में मानवता के विकास की कल्पना असभंव है। समाज के रचना विधान में नारी के माँ बहन एवं पत्नी के रूप हैं। वह सम परिस्थितियों में देवी है तो विषम परिस्थितियों में दुर्गा भवानी है। वह समाज रूपी गाड़ी का एक पहिया है, जिसके बिना समग्र जीवन ही पंगु है।

उपर्युक्त अपठित गद्यांश को पढ़कर नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर लिखिए -

1. उपर्युक्त गद्यांश का उचित शीर्षक दीजिए।
2. नारी दुर्गाभवानी किन परिस्थितियों में बन जाती है ?
3. नारी के अभाव में मानवता के विकास की कल्पना असंभव है। कैसे ?
4. उपर्युक्त गद्यांश का सारांश लिखिए।

उत्तर -

1. नारी की महत्ता / समाज में नारी का स्थान
2. विषम परिस्थितियों में नारी दुर्गाभवानी बन जाती है।
3. नारी के अभाव में मानवता के विकास की कल्पना असंभव है क्योंकि नारी सृजन की पूर्णता है।
4. सृष्टि के आदिकाल से नारी की महत्ता अक्षुण्ण है। उसके अभाव में मानवता के विकास की कल्पना असंभव है । वह समाज रूपी गाड़ी का एक पहिया है।

अब समझिए :

उपर्युक्त गद्यांश बिना पढ़ा हुआ गद्यांश है इसीलिए इसे अपठित गद्यांश कहा जाता है। अपठित सामग्री के अंतर्गत लेख, निबंध, समाचार, विज्ञापन, आदि हो सकते हैं। अपठित गद्यांश के आधार पर पूछे गए प्रश्नों के

उत्तर लिखते समय निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिए–

- प्रश्नों के उत्तर प्रस्तुत सामग्री में ही निहित रहते हैं इसलिए गद्यांश को दो–तीन बार ध्यानपूर्वक पढ़ें।
- उत्तर लिखते समय सरल, सुबोध तथा सहज भाषा का प्रयोग करें।
- पूछे गए प्रश्नों में अंतर्निहित उद्देश्य को समझकर ही प्रश्नों के उत्तर खोजें।

योग्यता विस्तार

1. आगामी स्वतंत्रता दिवस पर विद्यालय में तात्या टोपे एकांकी का मंचन कीजिए।
2. तात्या टोपे का चित्र बनाकर अपनी कक्षा में लगाइए।
3. दूरदर्शन से प्रसारित किसी ऐतिहासिक धारावाहिक पर स्वतन्त्र रूप से समीक्षात्मक टिप्पणी लिखिए।
4. एकांकी के पात्रों के मुखौटे बनाइए तथा उनकी प्रदर्शनी आयोजित कीजिए।
5. अपनी शाला के वार्षिक उत्सव में इस बार स्वयं कठपुतलियाँ बनाकर किसी ऐतिहासिक एकांकी की प्रस्तुति दीजिए।

शब्दार्थ

असीम = व्यापक,सीमा सहित
करामात = कारगुजारी
सतर्कता = सावधानी
हवाले = सौंपना, सुपुर्दगी
नश्वर = नाशवान
पराजय = हार
उद्यत = तैयार, तत्पर
प्रतिहारी = द्वार पर पहरा देने वाला, द्वारपाल

निराश = हताश
अपराह्न= दोपहर बाद
उत्सर्ग = बलिदान
प्रलोभन = लालच
अवाक =अचंभित,चकित,स्तब्ध
पारितोषिक = पुरस्कार
शोहरत = प्रसिद्धि,यश
प्रहरी = पहरेदार
द्वंद –युद्ध = दो व्यक्तियों का परस्पर युद्ध।

मैं क्यों लिखता हूँ

रामनारायण उपाध्याय

लेखक परिचय :

'लोक-संस्कृति-पुरुष' के रूप में प्रख्यात, निमाड़ी लोक साहित्य के मर्मज्ञ पण्डित रामनारायण उपाध्याय का जन्म 20 मई सन् 1918 को कालमुखी- नामक ग्राम जिला खण्डवा में हुआ। आपके पिता का नाम श्री सिद्धनाथ एवं माता का नाम दुर्गादेवी था। पत्नी शकुन्तला देवी की स्मृति में आपने 'लोक संस्कृति' न्यास की स्थापना 27 नवम्बर सन् 1989 को की थी ।

उपाध्याय जी 'मध्यप्रदेश आदिवासी लोक कला परिषद - भोपाल' एव 'राष्ट्रभाषा परिषद् - भोपाल' के संस्थापक सदस्य रहे। 20 जून सन् 2001 ई. को आप अपनी इहलीला समाप्त कर दिव्य-ज्योति में विलीन हो गए।

पण्डित उपाध्याय जी की प्रकाशित कृतियों की संख्या चालीस से अधिक है; तथापि - 'कुंकुम-कलश और आम्रपल्लव', 'हम तो बाबुल तोरे बाग की चिड़िया', कथाओं की अन्तर्कथाएँ, 'चतुर चिड़िया' तथा 'निमाड़ का लोक साहित्य और उसका इतिहास' उनकी पुरस्कृत कृतियाँ हैं।

पण्डित रामनारायण उपाध्याय घर के विद्वत् - वातावरण एवं संस्कृतनिष्ठ संस्कारों के कारण अंग्रेजी-हिन्दी में निरन्तर अध्ययनरत रहे; फलत: एक विशद जीवन-दृष्टि को आत्मसात् कर सके। ग्राम की माटी की गंध तथा लोक पुरुष की रहनि से युक्त पण्डित उपाध्याय के व्यक्तित्व में एक सच्चे किसान की भावुकता, सहृदयता और क्रियाशीलता समाहित थी। इन वैयक्तिक विशेषताओं के दर्शन आपकी रचनाओं में भी सहज ही हो जाते हैं। उपाध्याय जी अपने आस-पास के परिवेश को पूर्णतया हृदयंगम करके ही रचनाकर्म से जुड़ते थे, जिससे आपके रचनाकर्म की पीठिका में लोक-चिन्ता, प्रकृति-उपासना जैसे गूढ़ विषयों की व्यापकता समाहित हो सकी है। उनके साहित्य सृजन में सम्पूर्ण निमाड़ी लोक-साहित्य पर समग्र लेखन तो है ही; ललित निबंध, व्यंग्य, रूपक, संस्मरण, रिपोर्ताज और गांधी-साहित्य इत्यादि का वैविध्य भी है। उपाध्याय जी की वाणी, वेश और आचरण-व्यवहार में जहाँ गांधीवादी जीवन और विचार प्रत्यक्ष होते थे; वहीं ग्राम और ग्राम्य-संस्कृति मूर्तिमान होती थी।

केन्द्रीय भाव :

पंडित रामनारायण उपाध्याय एक प्रतिष्ठित निबंधकार एवं लोकसाहित्यविद् हैं। उनके निबंधों में लोकजीवन की छवियाँ और लोकजीवन की संवेदनाएँ प्राप्त होती हैं। वे सहज और आत्मीय-भाव से अपने पाठकों से संवाद करते हैं।

संकलित निबंध 'मैं क्यों लिखता हूँ' उनका आत्मव्यंजक निबंध है। इस निबंध में वे लेखक की प्रेरणाओं का उल्लेख करते हुए लेखकीय परिवेश की चर्चा करते हैं। लेखक अपने आस-पास से मिलजुलकर ही अपनी शक्तियों का प्रस्फुटन करता है। इस रूप में उपाध्याय जी ने अपने गाँव - घर से ही साहित्य रचने की प्रेरणा प्राप्त की है। रचनाकार की सरलता और सहजता को वे महत्वपूर्ण मानते हैं। उनकी संपर्कशीलता ही उनकी संवेदना का विस्तार करती है। वे साहित्यकारों से मिलने-जुलने और जनसाधारण से पत्र-व्यवहार करने में सदैव सजग हैं। साहित्यकार कहीं भी रहे; किन्तु उसका नाम उसके यश को चतुर्दिक विस्तारित करता रहता है। नाम की महिमा अनेक सन्दर्भों में लेखक को सुविधाएँ भी प्रदान करने वाली है। इस तरह सम्पर्क शीलता और परिचय की व्यापकता के अवसर लेखक को साहित्य रचने से ही प्राप्त होते हैं। लिखने का यह उद्देश्य सामाजिक स्तर पर लेखक की प्रतिष्ठा से परिपूर्ण है।

प्रस्तुत निबंध में उपाध्याय जी ने अपनी लेखन-प्रक्रिया से भी परिचित कराया है। लिखने के पूर्व लेखक की भाषा में उमड़ने वाला आवेग तथा रचना की निर्मिति में शब्दों की उपयुक्तता पर किए जाने वाले विचार को

वे महत्वपूर्ण मानते हैं। वे मानते हैं कि लिखने का कोई समय नहीं रहता है; फिर रचना के समय एकांत जरूरी है। अपने लेखन के उद्देश्यों की चर्चा करते हुए निबंधकार ने व्यक्त किया है कि उनके लिखने का उद्देश्य सत्य को प्रकट करना और मानवता का प्रसार करना है। लेखक के सन्दर्भ में पुस्तक की महत्ता का भी प्रतिपादन उन्होंने किया है। उपाध्यायजी अपनी संवेदना के प्रसार के संबंध में अनेक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं; कहीं प्रत्यक्ष और कहीं अप्रत्यक्ष रूप से। वे अपने पाठकों से संवेदना के स्तर पर जुड़ते हैं, यह भी लिखने की ही उपलब्धि है। यद्यपि लेखन का एक उद्देश्य धन अर्जित करना भी है; किन्तु निबंधकार ने इसे महत्व नहीं दिया है।

उपाध्याय जी का यह निबंध लेखन के उद्देश्यों को एकदम नए ढंग से व्यक्त करता है। निबन्ध की भाषा में प्रवाह है। आत्मकथा और संस्मरण जैसी विधाओं का भी इस निबंध में समावेश हो गया है। यह आत्मव्यंजक निबंध होते हुए भी साहित्य की प्रयोजनीयता को सामाजिक संदर्भों से जोड़ता है।

मैं क्यों लिखता हूँ ?

मैं आपको यह राज की बात बता देना चाहता हूँ कि मैं नहीं लिखता– वरन् कोई आता है और मुझसे अपनी बात लिखा ले जाता है।

मैं तो एक साधारण आदमी हूँ। गाँव और शहर में मेरे चार मित्र हैं। मैं उनके साथ शहर के किसी भी होटल में चाय पीता हूँ, चौराहे की दुकान पर पान खाता हूँ। झोला लेकर साग–भाजी लाने में मुझे झिझक नहीं होती। यदि कभी तीसरे दिन भी शेव नहीं कर पाता, तो ऐसा लगता कि मुझे आज बाहर नहीं निकलना चाहिए। कभी–कभी तो बिना प्रेस किए कपड़ों में समूचे शहर का चक्कर लगा आता हूँ।

मैं विशिष्ट किसी अर्थ में नहीं हूँ। मैंने देश–विदेश की यात्रा नहीं की। राजधानी में कॉफी हाउस में बैठकर साहित्य की चर्चा नहीं की। कहानी के नए या पुराने होने के वाद–विवाद में भाग नहीं लिया। मैं तो साहित्य का एक जिज्ञासु विद्यार्थी रहा हूँ। मैंने नई और पुरानी दोनों तरह की रचनाएँ खूब पढ़ी हैं। मेरी ऐसी मान्यता है कि डाक विभाग के चार्टर की तरह साहित्य को नए और पुराने खानों में बाँटा नहीं जा सकता। मैंने पुरानी कृतियों में भी शाश्वत साहित्य के चिह्न देखे हैं और नई कहानियों को भी किस्सा तोता–मैना जैसे पुराने कलेवर में इठलाते पाया है।

एक संस्कारनिष्ठ परिवार में मेरा जन्म हुआ। गाँव के खुले वातावरण में मैं पढ़ा और पला। मिट्टी की सौंधी सुगन्ध और फसलों के मस्ती–भरे गीतों को मैंने सदा अपने नजदीक अनुभव किया है। इसी से इस देश की आम–जनता की भाषा से मैं परिचित हूँ और उसी के स्नेह एवं दर्द को लेकर मेरी अधिकांश रचनाओं का निर्माण हुआ है। मेरे घर के आँगन में लोक–गीतों की गंगा बहती रही है। मैंने उनके प्यार–भरे गीतों को गाया और उनके दर्द ने मुझे रुलाया भी है। उन्हीं के जीवन्त संस्पर्श को लेकर मेरी कलम की स्याही सदा गीली रही है।

एक लेखक की तरह मैंने कभी गम्भीर होने का अभिनय नहीं किया बल्कि बच्चों को शिकायत है कि मैं उनसे भी ज्यादा बच्चा हूँ। जब चार मित्रों को लेकर गोष्ठी जमती है, हँसी के कहकहों से घर गूँज उठता है।

मुझे कभी सम्मान की भूख नहीं लगी। मेरी यह मान्यता है कि मनुष्य या तो अपने लिए सम्मान पा सकता है या अपनी रचनाओं के लिए। इसलिए मैंने अपनी रचनाओं को आगे रखकर अपने–आपको पीछे रखने का प्रयास किया है। कारण, जिन्होंने भी अपने लिए सम्मान चाहा, उन्हें अपनी रचनाओं की बलि चढ़ानी पड़ी।

साहित्य में मैं स्नेह को बहुत मूल्य देता हूँ। पैसा तो कोई भी कमा सकता है, लेकिन स्नेह अर्जन सिर्फ साहित्यकार ही कर सकता है। इसलिए मुझे साहित्यकार मित्रों से मिलने में सुख होता है। जब भी किसी नए शहर में जाता हूँ, सबसे पहले वहाँ के साहित्यकारों के पते लगाकर उनसे मिलता हूँ। बड़े आदमियों से मिलना मुझे कतई पसन्द नहीं, लेकिन साहित्यकार अगर साधारण जन भी हो तो उसका घर खोजकर उसके यहाँ जाने में सुख अनुभव होता है। सोचता हूँ, लेखक होकर भी जिसमें अपने सहयोगियों, मित्रों से मिलने की प्रेरणा न जगे, वह कैसा साहित्यिक है ? जिनसे मिल नहीं पाता, उन तक पत्रों के माध्यम से अपना प्रणाम पहुँचाने में ही सन्तोष अनुभव कर लेता हूँ।

गाँव के एकान्त जीवन में डाक मेरा सबसे बड़ा साथी है। किसी अन्तरंग मित्र के आने की तरह मैं उसकी प्रतीक्षा में रहता हूँ। डाक में मुझे अपने मित्रों के पत्रों का बड़ा मोह रहा है। मिलकर तो आदमी बाध्य होता है, दो बात करने के लिए, लेकिन बिना मिले भी जिनमें अपनों की याद जगे, याद के उन चरणों में मैं श्रद्धा से नत हूँ। अपने नाम आने वाले हर पत्र का जवाब देना मेरा स्वभाव है। किसी के पत्र का जवाब नहीं देने में मुझे ऐसा लगता है, जैसे कोई हमारे दरवाजे पर दस्तक दे और हम घर में होकर भी नहीं बोलें। हर आने वाले से मिलना और हर खत का जवाब देना मेरे जीवन का अनिवार्य अंग बन चुका है। कौन जाने, कहाँ किस रूप में भगवान मिल जाएँ।

मैं जब भी किसी पत्र-पत्रिका में अपना नाम पढ़ता हूँ तो सोचता हूँ क्या यह मैं ही हूँ ? मुझे लगता है कि मुझसे बड़ा तो मेरा नाम है। जहाँ मैं नहीं जा सका, वहाँ वह पहुँचा है और जिनसे मैं नहीं मिल सका, उनसे वह मिला है। अनेक बड़े आदमियों से उसने मेरा परिचय कराया है। मैं जब भी किसी नए आदमी से मिलने के लिए जाता हूँ तो वह सामने आकर कहता है, ''भाई साहब, आप जरा ठहरिए, मैं अभी आया।'' और वह तुरन्त ही सूक्ष्म रूप रखकर सुरसा के मुँह में प्रवेश करने वाले हनुमान की तरह एक चिट के माध्यम से उस कार्यालय में पहुँचता है और वहाँ पर बैठे आदमियों के कान में जाने क्या कहता है कि वे तुरन्त ही मुझे बुला लेते हैं।

अगर मैं किसी से मिलने पर उसे अपना नाम नहीं बताऊँ, तो सम्भव है मेरी रचनाओं को सम्मान के साथ छापने वाला सम्पादक भी मुझे अपने कमरे में न आने दे और मेरा अन्तरंग मित्र ट्रेन के किसी डिब्बे में मिल जाने पर अपना होल्डाल बिछाने की धुन में मेरे झोले को एक तरफ फेंक दे। वह तो मेरा नाम ही है जो सदा बीच में आकर मेरी रक्षा करता है।

मैं मित्रों के प्रश्नों से परेशान हूँ। कभी कोई पूछता है कि आप क्यों लिखते हैं ? प्रश्न जरा मुश्किल है। लगता है जैसे मैं नहीं लिखता वरन् कोई आता है और मुझसे अपनी बात लिखा ले जाता है। बहुत बार यदि मैं चाहूँ तो भी लिख नहीं सकता, लेकिन कभी-कभी ऐसा आवेग आ जाता है कि मैं रात में सोते से उठ बैठता हूँ और जब तक मन की बात लिख न डालूँ तब तक मुझे चैन नहीं पड़ती।

मन में जब भी कोई नया विचार आता है, मेरा खाना, पीना, सोना, बैठना मुश्किल हो जाता है और तब मैं उस विचार का एक छोर पकड़कर टहलने लगता हूँ। रुई को पींजने की तरह विचारों को धुनकर उनकी पोनी बना, मन के चरखे पर उससे तार निकालने में बड़ा आनन्द आता है और फिर जैसे कोई ताने-बाने से कपड़ा बुनता है, उसी तरह विचारों को बुनकर मेरी रचना तैयार हो जाती है।

यदि उनमें कहीं कोई शब्द ठीक से नहीं बैठता, तो यन्त्र में फिट किए जाने वाले पुर्जे की तरह मैं उसकी जगह पर अनेक नए-नए शब्दों को रख कर देखता हूँ कि इनमें कौन-सा शब्द वहाँ ठीक से बैठता है और इस तरह जो शब्द उस जगह पर ऊँचा या नीचा नहीं पड़ता उसे वहाँ पर रख देता हूँ।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कुछ प्रिय शब्दों का मोह त्यागकर उन्हें इसलिए निकाल देना पड़ता है कि वे

भाषा के प्रवाह में बाधक जान पड़ते हैं। उनके निकालते ही ऐसा लगता है कि प्रवाह अब सहज हो गया है और बात अब ठीक ढंग से कही गई है।

लिखने के पूर्व मैं रचना को पूरी तरह मन में तैयार कर लेता हूँ और बाद में तो जैसे कोई कापी तैयार करता है, ऐसे मन की तस्वीर कागज पर उतरती चलती है।

लिखने के लिए मुझे किसी खास समय या बाह्य साधन की आवश्यकता नहीं है। जब भी मौज आती है, बिना किसी टेबल-कुर्सी, या चाय की प्याली के खाली जमीन पर बैठकर पैर की सीट पर दफती जमा लिखने में आनन्द आता है।

हाँ, जब रचना मन में उमड़ रही हो, तब मैं पूरा एकान्त चाहता हूँ। इसमें कभी-कभी बड़ी मुश्किल होती है। जब मैं अपने एकान्त कमरे में या खाना खाते समय मन-ही-मन किसी विचार को गुनगुनाने लगता हूँ तो श्रीमती जी पूछती हैं, ''यह किससे गुफ्तगू हो रही है ?'' और यूं मैं उनके मजाक का पात्र बने बिना नहीं रहता।

लिखने के लिए मैंने कभी नहीं लिखा, आर्डर पर माल देने की तरह आर्डर पर लिखने की मेरी आदत नहीं है। किसी के कहने पर लिखना भी चाहूँ तो ऐसे लगता है कि अब मैं लिख ही नहीं सकूँगा। लेकिन कभी-कभी मैं अपनी जेब में कागज और कलम डाल खेतों में निकल जाता हूँ और किसी खेत की मेड़ पर बैठ सुदूर क्षितिज को निहारते हुए मेरी रचना का रूप अपने-आप ही निखरने लगता है। गाँव का वातावरण और गाँव के व्यक्ति मेरे मन के विशेष अनुकूल रहे हैं।

कई बार जब अपने गाँव से आठ मील दूर स्टेशन से घर आने के लिए सवारी नहीं मिल पाती तो किसी विचार का छोर पकड़ कर उसे लम्बाते हुए घर आ जाता हूँ और यूँ मेरा एक निबन्ध तैयार हो जाता है।

कभी-कभी जब बड़ी रात गए तक नींद नहीं आती तो रात्रि की नीरवता और आकाश के तारे भी लिखने में सहायक होते हैं।

जब भी कोई सच्ची या अच्छी बात मन पर छा जाती है तो उसे एक मन से दूसरे मन तक पहुँचाने के लिए भी लिखता आया हूँ।

मनुष्य की मनुष्यता पर जहाँ भी प्रहार होता है, उसका विरोध करने के लिए भी मैंने लिखा है।

सच तो यह है कि लिखना मेरे जीवन का अविभाज्य अंग है और अपने आपको अधिक-से-अधिक आदमियों के साथ आत्मसात् करने के लिए ही लिखता हूँ। लिखने में मुझे आत्मदान करने की तरह सुख मिलता है।

मैं क्यों लिखता हूँ ? शायद इसलिए कि मैं लिखे बिना रह नहीं सकता।

जिस दिन मेरी कोई नई पुस्तक छपकर आती है, उस दिन समूचे घर में उसी की धूम रहती है। कोई आता है, तो चेहरे की तरह उसके मुखपृष्ठ को निहारता है। कोई आता है, तो बिना सिलसिले की बात की तरह यूँ ही उसके पृष्ठों को उलटने लगता है। कोई उसे बीच में से ही पढ़ना शुरू कर देता है, और कोई बड़ी शान से उसे अपनी बगल में दबाकर, उधार माँगकर पढ़ने के लिए घर ले जाता है। यद्यपि यह सच है कि ऐसी उधार दी हुई पुस्तकें वापस नहीं लौटतीं और यदि नई हों तो और भी नहीं।

बच्चों की तरह नई पुस्तक की उछल-कूद को रोका नहीं जा सकता। कभी यह ताक या टेबल पर चढ़कर वहाँ से ताक-झाँक करती है, कभी रैक या अलमारी से मुँह निकालकर मुँह चिढ़ाती है तो कभी बिस्तरे की चादर में छिपकर

चुनौती देती है कि अब ढूँढ़ो तो जानूँ।

जिस दिन मेरी पुस्तक की पहली प्रति बिकती है तो बड़ा सुख होता है। लेकिन पुस्तक का पूरा-पूरा मूल्य लेकर भी जब उसे किसी के हाथों सौंपता हूँ तो जाने क्यों मेरे हाथ काँपने लगते हैं। मन अनायास ही गुनगुनाने लगता है- 'अभी तक यह मेरी थी, अब तुम्हारी हुई। इसे सुख दोगे सुखी होगी, दु:ख दोगे दु:खी होगी।'

इन पुस्तकों ने एक दोस्त की तरह मेरा संग-साथ निभाया है। जब कभी मेरा मन उदास हो जाता है, कोई छोटी-सी बात मेरे मन को बेचैन कर जाती है, किसी घटना-विशेष को लेकर मैं तिलमिला उठता हूँ, कोई समस्या मुझे सोने नहीं देती या किन्हीं चिन्ताओं से मैं घिर जाता हूँ तब ये पुस्तकें किसी बुजुर्ग की तरह मेरी पीठ को सहलाते हुए मुझे ढाढ़स बँधाती आई हैं।

मेरे रोज-ब-रोज के कामों में मदद पहुँचाना भी इनका स्वभाव बन चुका है। सुबह उठकर साग-भाजी लाने, धोबी को कपड़े देने, दूध-चाय का खर्च उठाने और अखबार का बिल चुकाने जैसे अनेक छोटे-मोटे कार्य ये स्वयं करती आई है!

कभी-कभी जब मेरा मन उदास हो जाता है तो वे मेरे नजदीक आकर कान में पूछती हैं- 'कहिए, किस बात की परेशानी है ?' और मैं उन्हें समझाता हूँ कि घर में एक हफ्ते से ज्यादा का राशन नहीं है राशन देने वाले का कहना है कि उधार नहीं मिलेगा। वह कहती है- 'बस ?' और एक हाथ में झोला लेकर जाने कहाँ-कहाँ का चक्कर काटते हुए, मेरी समस्या सुलझा देती है।

जब कभी मुझे नजदीकी शहर के दौरे पर जाना होता है, वह मेरे साथ जाना नहीं भूलती और टिकट से लगाकर मेरे रास्ते के सारे खर्च तक की जिम्मेदारी स्वयं अपने ऊपर ओढ़ लेती है।

अनेक बार उसने मेरी बड़ी से बड़ी समस्याओं को सुलझाने में भी योगदान किया है। जब मेरा मकान इतना शिकस्त हो गया कि बिना मरम्मत के उसमें रहा नहीं जा सकता तब जाने कैसे और कहाँ से- उसने मेरी हथेली पर कुछ नोट लाकर रख दिए थे। मैं जब अपने मकान के दरवाजों की ओर देखता हूँ तो मुझे लगता है कि उसमें पल्ले नहीं पुस्तकें लगी हैं। जब मैं अपनी छत की ओर निहारता हूँ तो मुझे लगता है कि मेरे सिर पर छत की नहीं, पुस्तकों की छाया है!

कभी-कभी बड़ी मुश्किल होती है। एक बार बीमार पड़ा तो उसने मेरा इलाज कराया। मैं तो पूर्ण स्वस्थ हो गया लेकिन वह मेरे साथ नहीं लौट सकी। उसके उस नहीं लौटने का दर्द आज भी मेरे मन को सालता रहा है और अब अनायास ही गुनगुनाने को जी चाहता है-

'अभी तक यह मेरी थी, अब तुम्हारी हुई। इसे सुख दोगे सुखी होगी, दु:ख दोगे दु:खी होगी।'

एक दिन एक मित्र ने पूछा, ''आपको अपनी पुस्तक पर कितनी रायल्टी मिली ?''

बहुत सोचा, लेकिन कोई ऐसा अंक खोज नहीं पाया, जिसे अपने मित्र को बताकर गर्व अनुभव कर सकूँ। पिछले बीस वर्ष से निरंतर लिख रहा हूँ। क्या इन बीस वर्षों में ऐसा कुछ नहीं पा सका, जिस पर गर्व किया जा सके तभी मेरी आँखों में कुछ चित्र तैरने लगे।

पिछले आठ वर्षों से, रक्षाबंधन पर मेरे नाम से लिफाफे में एक राखी आती है। कौन भेजता है इसे ? इसकी भी एक लम्बी कहानी है। आज से वर्षों पूर्व साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' में मेरी एक रचना छपी थी। उसका शीर्षक था- 'न कोई खत, न कोई लिफाफा।' उसमें मैंने अन्तर्देशीय पत्र के जन्म पर एक व्यंग्य कथा लिखी थी। उसके कुछ दिनों पश्चात्

अन्तर्देशीय लिफाफे पर ही मुझे एक खत मिला, जिसमें कोई सम्बोधन नहीं था।

लिखा था, ''कितना आश्चर्य होगा, सम्बोधन रहित पत्र को देखकर।'' पर इसमें मेरा कोई दोष नहीं, बुद्धि का दोष है। मित्र लिखने की इच्छा थी, लेकिन कुछ भी तो पूर्व परिचय नहीं। 'भाई' लिखना चाहती हूँ, लेकिन पत्र में ही नहीं, मेरे जीवन में भी भाई का जो स्थान रिक्त पड़ा है, क्या आप उसे भर सकेंगे ? और उसके बाद मेरा पत्र पाकर, प्रतिवर्ष रक्षाबंधन पर मैं उस अनदेखी बहन से अपने लिए एक रक्षासूत्र पाता आया हूँ। सोचता हूँ कि मेरी रचना की इससे बढ़कर और क्या रायल्टी हो सकती है ?

और यह दूसरा पत्र किसका है ? किसी बुकसेलर का ? अथवा किसी संस्था ने मेरी पुस्तके मँगाई हैं ? जी नहीं। यह तो एक अस्पताल से आया है। सुदूर वृन्दावन से अस्पताल के बिस्तरे पर पड़े एक रोगी ने लिखा है।

''मैं बहुत दिनों से प्राणघातक रोग से पीड़ित हूँ। आपका साहित्य पढ़ने की आकांक्षा है। लेकिन मेरी आर्थिक दशा ऐसी नहीं कि खरीदकर मँगा सकूँ। अतएव प्रार्थना है कि आप अपनी कुछ पुस्तकें, जिनमें सम्भव हो तो 'गरीब और अमीर पुस्तकें' भी रहे, भेजकर अनुगृहीत करें। विश्वास है, आपका स्नेह-दान अवश्य मिलेगा।''

और मुझे लगा कि जैसे मेरी पुस्तक का समूचा संस्करण खरीद लिया गया हो। किसी की पुस्तक किसी मरणासन्न रोगी को सांत्वना दे सके, इससे बढ़कर और उसका क्या मूल्य हो सकता है!

एक दिन बस से मैं अपने गाँव जा रहा था कि इसी बीच रास्ते के एक गाँव से एक किसान चढ़ा और मुझे देखकर बार-बार हँसने लगा। मुझे उसकी यह बेतुकी हँसी अजीब लगी और मैंने पूछा, ''हँसते क्यों हो भाई ?''

बोला, ''एक दिन मेरी बच्ची स्कूल से एक किताब लाई थी। उसे पढ़कर मेरी स्त्री और बच्ची दोनों खुश हुए। आज आप दिखे तो मुझे उस पुस्तक की याद हो आई और मैं अपनी हँसी रोक नहीं पाया। सोचता हूँ, आप इतनी अच्छी किताब लिख कैसे लेते हैं कि जिसे पढ़कर मेरी स्त्री और लड़की दोनों खुश हों!''

एक बार मैं एक दफ्तर में पहुँचा तो मैंने देखा,वहाँ का एक बाबू मेरी बात पर ध्यान नहीं दे रहा था। इसी बीच एक परिचित साथी ने मुझे मेरा नाम लेकर पुकारा। जैसे ही उसने मेरा नाम सुना, वह अपनी कुर्सी से उठ खड़ा हुआ और बोला, ''मुझे क्षमा करें! मैंने आपको पहचाना नहीं था। आप वही है न जिन्होंने एक बार इटारसी स्टेशन पर एक आने का प्लेटफार्म टिकिट खरीदते समय बाबू के पास चेंज नहीं होने पर दस रुपये का नोट यह कहकर रखवाया था कि जब गाड़ी चली जाए तब दे देना ? और उसके बाद जब आप चेंज लेने पहुँचे तो उस बाबू की ड्यूटी बदल चुकी थी। फिर भी नए बाबू ने आपको पूरे नौ रुपये पन्द्रह आने लौटा दिए।''

मैंने आपकी वह 'अनजाने-जाने-पहचाने' पुस्तक पढ़ी है। अभी-अभी 'ज्ञानोदय' व 'धर्मयुग' का लेख भी पढ़ा। यद्यपि गरीब होने के कारण हम हरेक पत्रिका को खरीदकर नहीं पढ़ सकते, लेकिन पुरानी पुस्तकों की दुकान से पुरानी पत्रिकाएँ खरीदकर आपकी रचनाएँ पढ़ लेते हैं।

मुझे अपने इस गरीब, किन्तु पढ़ने की दिशा में समृद्ध पाठक पर गर्व है।

एक दिन मुझे किराये की साइकिल की आवश्यकता थी। मैं एक फुटपाथ पर बैठे साइकिल वाले लड़के से किराये की साइकिल ले गया।

आधे घंटे बाद जब मैंने साइकिल लौटाते समय किराये के पैसे देने चाहे तो उसने पैसे लेने से इनकार कर दिया। बोला, ''जब से आपकी रचनाएँ पढ़ी हैं तभी से आपसे मिलने की इच्छा थी। आज अनायास ही भेंट हो गई। वैसे मेरे पास

क्या है? जिससे आपकी सेवा कर सकूँ। क्या आप मुझे इतना अधिकार भी नहीं देंगे, कि मैं आपसे किराये के पैसे नहीं लूँ ?'' और उसके इस स्नेह के समक्ष मैं आज भी कृतज्ञता से नत हूँ।

सोचता हूँ, मेरी रचना पढ़कर पत्र में ही नहीं, जीवन में मुझे अपने भाई का स्थान देने वाली वह बहन, अस्पताल में पड़ा वह नौजवान, जिसके मन में मृत्युशय्या पर भी मेरी पुस्तक पढ़ने की याद जगती है; बस में मिलने वाला वह किसान, जिसे इस बात पर हँसी आ जाती है कि मैं इतनी अच्छी किताब, लिख कैसे लेता हूँ, जिसे पढ़कर उसकी स्त्री और लड़की दोनों खुश हों; दफ्तर का वह बाबू जो रोटी में से रकम बचाकर पुरानी किताबों की दुकान से मेरी रचनाएँ खरीदकर पढ़ता है तथा किराये की साइकिल की दुकान चलाने वाला वह गरीब लड़का, जो मुझसे इसलिए अपनी साइकिल का किराया नहीं लेना चाहता कि मैं उसका प्रिय लेखक हूँ– क्या इन सबका यह असीम स्नेह; मेरी पुस्तक की पर्याप्त रायल्टी नहीं है ?

अभ्यास

अति लघु उत्तरीय प्रश्न –

1. रामनारायण उपाध्याय की अधिकांश रचनाओं के निर्माण का आधार क्या है ?
2. गाँव के एकान्त जीवन में लेखक का सबसे बड़ा साथी कौन है ?
3. लेखक के गाँव से स्टेशन कितनी दूर था ?
4. सम्मान के विषय में लेखक की क्या मान्यता है ?
5. ''लिखने के लिए मैंने कभी नहीं लिखा'' इसका तात्पर्य एक वाक्य में लिखिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न –

1. ''मुझसे बड़ा तो मेरा नाम है।'' लेखक ने ऐसा क्यों कहा है ?
2. कभी–कभी प्रिय शब्दों का मोह त्यागकर लेखक उन्हें क्यों निकाल देता है ?
3. पुस्तक की पहली प्रति बिकने पर लेखक को क्या अनुभव हुआ ?
4. बस में मिला गाँव का किसान लेखक को देखकर बार–बार क्यों हँसने लगा था ?
5. लेखक के उदास होने पर पुस्तकें क्या कहती हैं ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

1. पं. रामनारायण उपाध्याय किन–किन परिस्थितियों में लेखन करते हैं ?
2. जब घर पर नई पुस्तक छप कर आती थी तो किस तरह का वातावरण निर्मित हो जाता था ?
3. लेखक अपनी पुस्तक की पर्याप्त रॉयल्टी किसे मानकर संतुष्ट होता है ?
4. ''साहित्य में मैं स्नेह को बहुत मूल्य देता हूँ'' रामनारायण जी के इस कथन का आशय स्पष्ट कीजिए।
5. ''लिखना मेरे जीवन का अविभाज्य अंग है और अपने आपको अधिक से अधिक आदमियों के साथ आत्मसात करने के लिए ही लिखता हूँ। लिखने में मुझे आत्मदान करने की तरह सुख मिलता है।''

दिये गए गद्यांश को पढ़कर पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दीजिए -

(1) पाठ और लेखक का नाम लिखिए।

(2) यह कथन किसके द्वारा कहा गया है ?

(3) ''आत्मदान'' से यहाँ क्या तात्पर्य है ?

भाषा अध्ययन

1. निम्नलिखित प्रत्ययों से दो-दो शब्द बनाइए -

ता, कार, वाला, पन, इक

2. निम्नलिखित शब्दों के पर्यायवाची लिखिए -

घर, गंगा, कपड़ा, हाथ, मुँह।

3. दिए गए मुहावरों का वाक्यों में प्रयोग कीजिए -

मुँह चिढ़ाना, त्यौरियाँ चढ़ जाना, कसौटी पर कसना, हाथ काँपना, चैन न पड़ना।

4. इन शब्दों में से अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू और आंचलिक शब्दों को छाँटिए -

रायल्टी,	इन्सान,	पर्याप्त,	इन्कार,	पूर्व,	किस्सा,
झोला,	खटिया,	काबिल,	स्टेशन,	गर्व,	टेबल,
दफती,	झिझक,	समूचा,	राज़,	विभाग	

पढ़िए और समझिए -

- मोहन पत्र लिखता है।
- मोहन के द्वारा पत्र लिखा जाता है।
- मोहन से लिखा जाता है।

ऊपर लिखे तीनों वाक्यों को ध्यान से पढ़िए। पहले वाक्य में ''लिखता'' क्रिया के रूप से स्पष्ट है कि ''मोहन'' कर्ता की प्रधानता है।

दूसरे वाक्य में क्रिया का रूप बताता है कि कुछ कार्य (पत्र लिखना) होता है और वह कर्ता के द्वारा किया जाता है अर्थात कर्म (पत्र) की प्रधानता है।

तीसरे वाक्य में न तो कर्ता की प्रधानता है न ही कर्म की प्रधानता है इसमें भाव की प्रधानता है। यह वाक्य सिर्फ यही बताता है कि कर्त्ता (मोहन) कार्य करने में समर्थ है।

इस प्रकार तीनों वाक्य क्रमशः कर्ता, कर्म और भाव की प्रधानता सूचित करते हैं। क्रिया के अलग-अलग रूपों की इस प्रकार की सूचना देना ही ''वाच्य'' कहलाता है। वाच्य के आधार पर वाक्य के तीन भेद होते हैं-

वाच्य

कर्तृवाच्य **कर्मवाच्य** **भाववाच्य**

कर्तृवाच्य – क्रिया का सीधा सम्बन्ध कर्त्ता से होता है। इन वाक्यों में कर्ता की प्रधानता होती है। क्रिया के लिए लिंग भी कर्ता के अनुसार निर्धारित होते हैं।

जैसे – राधा कपड़े धो रही है।
मोहन विद्यालय जा रहा है।
वे घूम रहे हैं।

कर्मवाच्य – इसमें क्रिया का सीधा संबंध कर्म से होता है और क्रिया का रूप कर्म के अनुसार बदलता है। इसकी मुख्य क्रिया सकर्मक होती है।

जैसे – मजदूरों द्वारा भवन बनाया गया।
नानी के द्वारा कहानी सुनाई जाती है।
गीता ने आम खाया।

कर्मवाच्य में कर्ता के बाद, से, द्वारा, के द्वारा का प्रयोग किया जाता है।

भाववाच्य – इसमें क्रिया के पुरुष, वचन, लिंग हमेशा अन्यपुरुष, एकवचन और पुल्लिंग में ही रहते हैं। इसमें कर्ता और कर्म की प्रधानता न होकर क्रिया की प्रधानता होती है। वाक्य का भाव क्रिया आश्रित होता है।

जैसे – उससे पढ़ा नहीं जाता।
विमला से खेला नहीं जाता है।
सीता से चला नहीं जाता।

और जानिए –

1. कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य बनाते समय मुख्य कर्ता के साथ से, द्वारा या के द्वारा जोड़कर उसे करण कारक बना दिया जाता है।

2. जा धातु के क्रिया रूप कर्मवाच्य की मुख्य क्रिया के लिंग, वचन आदि के साथ जोड़कर ''साधारण क्रिया'' को ''संयुक्त क्रिया'' बना दिया जाता है

   जैसे – खाता है – खाया जाता है। को मारा – को मारा गया।

3. कर्तृवाच्य से भाववाच्य बनाते समय वाक्य में कर्ता और कर्म की प्रधानता न होकर क्रिया की प्रधानता होती है।

   जैसे – हँसता है – हँसा जाता है। खेला – खेला गया।

   इसमें क्रिया सदैव अन्य पुरुष, पुल्लिंग, एकवचन में रहती है।

5. **नीचे दिए वाक्यों में निर्देशानुसार वाच्य परिवर्तन कीजिए -**

(i) लड़का गीत गाता है। **(कर्म वाच्य)**

(ii) रमेश द्वारा नाटक खेला गया। **(कर्तृ वाच्य)**

(iii) बालक छत से कूदते हैं। **(भाव वाच्य)**

(iv) पक्षी आकाश में उड़ता है। **(भाव वाच्य)**

(v) कमला से कल पत्र लिखा जाएगा। **(कर्तृ वाच्य)**

(vi) लड़का पुस्तक पढ़ता है। **(कर्म वाच्य)**

योग्यता विस्तार -

1. जब किसी की कोई बात, संस्कार या गुण आपको अच्छा लगे या प्रभावित कर दे तो उसे सूक्ति रूप में लिखकर कक्षा में लगाइए।
2. ''पुस्तकें सच्ची साथी होती हैं'' - विषय पर कक्षा में चर्चा कीजिए।
3. यदि आपके कोई प्रिय लेखक हैं तो उनकी लिखी पुस्तकों की सूची बनाइए।
4. आप अपनी डायरी प्रतिदिन लिखिए। रोज कुछ लिखते रहने से भाव अभिव्यक्ति में परिष्कार होता है। लेखक बनने की यह पहली शर्त है।

शब्दार्थ

जिज्ञासु = जानने की इच्छा रखने वाला *शाश्वत*= सदैव *कलेवर* = आकार, स्वरूप

आवेग = उद्वेग, जोश *सांत्वना* = धीरज बँधाना *आत्मदान* = आत्मार्पण

आत्मसात = अपने अधिकार में लेना अपने में मिलाना *अनुगृहीत* = जिस पर कृपा की गई हो, उपकृत।

❋ ❋ ❋

यशोधरा

लेखक परिचय :

डॉ. रघुवीर सिंह

डॉ. रघुवीर सिंह का जन्म सन् 1908 ई. में मन्दसौर जिले के सीतामऊ में हुआ। ये इतिहास एवं संस्कृति के प्रवक्ता के रूप में जाने जाते हैं। इन्होंने आगरा विश्वविद्यालय से एम.ए. और डी.लिट्. की उपाधि प्राप्त की। देश के प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. सरकार की संगति में उन्होंने इतिहास-शोध का कार्य किया और ऐतिहासिक विषयों पर लेखन में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई। वे इतिहास के ज्ञाता होने के साथ-साथ सहृदय सौन्दर्योपासक होने के कारण साहित्य में भी अपनी पैठ बना सके। उनका निधन ई. सन् 1991 में हुआ।

डॉ. रघुवीर की इतिहास केन्द्रित प्रसिद्ध रचनाएँ 'पूर्व मध्यकालीन भारत', 'मालवा में युगान्तर', 'पूर्व आधुनिक राजस्थान' हैं। उनकी अन्य कृतियाँ हैं - 'शेष-स्मृतियाँ', 'सप्तद्वीप', 'बिखरे फूल', 'जीवनकण'। इन साहित्यिक निबन्धों में भी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का आश्रय विद्यमान है जिसमें तत्कालीन युग-जीवन मुखर है।

डॉ. रघुवीर सिंह की भाषा सरल, स्पष्ट और सुबोध है। यद्यपि भाषा में संस्कृतनिष्ठता दृष्टिगत होती है तथापि यथावसर विषयानुकूल उर्दू शब्दों के प्रयोग से भी परहेज नहीं किया गया है। यही कारण है कि विषय-प्रतिपादन में प्रवाह और प्रभावोत्पादकता आ गई है। भाषा ललित हो गई है जो सहज ही पाठक को भावप्रवण और संवेदनशील सहयात्री बना लेती है। सौन्दर्य में हार्दिक रमणीय के कारण ही उनमें कहावतों, मुहावरों का समावेश हो गया है और अभिव्यक्ति में काव्य की सी भावुकता अनुप्राणित है।

डॉ. रघुवीर हिन्दी साहित्य में ऐतिहासिक निबन्धकार के रूप में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन निबन्धों की विशेषता यह है कि इनमें उनका दार्शनिक चिन्तन और सांस्कृतिक आलोचक का स्वरूप सर्वत्र उपस्थित है। उनकी इस शोध, चिन्तन एवं सांस्कृतिक साहित्यिक अभिरूचि का मूर्त रूप है 'नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ' जहाँ साहित्य, इतिहास एवं संस्कृति में शोध की अनेक सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

केन्द्रीय भाव :

रघुवीर सिंह प्रसिद्ध इतिहास लेखक तथा गद्यकाव्य सर्जक हैं। ''यशोधरा' इनका उच्चकोटि का गद्यकाव्य है। लेखक ने इसमें यशोधरा के विरह का मार्मिक वर्णन करते हुए उसके उदात्त चरित्र पर प्रकाश डाला है। इतिहास में इस बात के प्रमाण हैं कि कपिलवस्तु के राजकुमार गौतम संसार के दु:खों से छुटकारा पाने के उपाय खोजने, अपनी सुंदर पत्नी यशोधरा और बेटे राहुल को त्यागकार वन में तपस्या करने गए थे।

दु:ख के सागर में डूबती-उतराती यशोधरा विचार करती है कि उसका प्रियतम इतना कठोर क्यों हो गया। तन-मन न्यौछावर करने वाली यशोधरा मानो जीवन हार बैठी है। अनेक प्रतीकों के माध्यम से अपने पति गौतम का स्मरण करते हुए यशोधरा पति के आगमन की प्रतीक्षा में है। तथागत बुद्ध के रूप में लौटे उसके पति मानो भिक्षुक बनकर यशोधरा के सम्मुख खड़े हैं। यशोधरा सब कुछ दे चुकी है। पूछती है! अब और क्या चाहिए? बुद्ध कहते हैं मुझे चिरवियोग की भीख देती जाओ। लेखक कहना चाहते हैं कि बुद्ध को अब सांसारिक सुखों से विरक्ति है और अब वे अपना शेष जीवन लोक कल्याण में व्यतीत करना चाहते हैं। इसलिए वे यशोधरा से हमेशा के लिए दूर हो गए हैं।

यशोधरा

कीट-पतंगों तक को यत्किंचित् भी दु:ख न देने को उत्सुक गौतम अपनी प्रियतमा को ही अपार दु:ख-सागर में ढकेल गए और उनका वह लाड़ला राहुल . . . पिता के जीवित रहते भी अनाथ हो गया। मानव के लिए चिर-सुख का वह अप्राप्य अमृत प्राप्त करने को व्यग्र गौतम ने अपने जीवन-सागर का मंथन किया, और उससे निकले चिर-वियोग के उस भयंकर हलाहल को पिया उनकी प्रियतमा यशोधरा ने . . . परन्तु इस कालकूट को पीकर भी यशोधरा नील-कण्ठा नहीं हुई। कैलाशवासी शंकर भी यह देखकर लज्जा के मारे सकुचा गए।

रात में न जाने कितने नित नए सपने जुड़ते रहते हैं परन्तु उस विकराल रात ने जीवन से सच्चे सपनों को भी सर्वदा के लिये भग्न कर दिया और न जाने कितने अनगिनत दु:ख भरे दिवसों की अटूट परम्परा प्रारम्भ कर दी। किन्तु अपने सारे उजाले को लेकर भी क्या वह सूर्य यशोधरा के उस वियोगी सूने दिल के निराशापूर्ण अन्धकार को यत्किंचित् भी दूर कर सकता था? अपनी सच्ची प्रियतमा के प्रति कोई गाढ़ा प्रेमी कभी इतना निष्ठुर हुआ था? अपने प्रियतम के उस सीमित किन्तु प्रगाढ़ प्रेम में वह इतनी बँध गई थी कि अब उसका असीम होकर विश्व-बन्धुत्व में पलट सकना एक सर्वथा अनहोनी बात थी।

विरही यशोधरा उदास बैठी है। आँसुओं से पलक भारी होते रहते हैं, अधरों पर विरह की पीर दिख रही है और आज तो उसका जीवनसाथी प्रियतम गौतम भी साथ नहीं है . . . जगन्माता धरती भी बैरिन जान पड़ती है। वहाँ चरण रखते भी वह हिचकिचाती है। स्नेह दीप से जगमगाते नवल-नयनों की द्युति क्षीण होने लगी और उसकी ये अधखुली आँखें अब ऋतुराज की ओर भी नहीं देखती थीं। उसके एकाकी जीवन में बारम्बार उभरती रहती थीं, गए बीते दिनों की मीठी याद भरी मतवाली बीती बातें, जिनसे उसके सांसारिक जीवन का वह सूनापन निरन्तर और भी अधिक बढ़ता जाता था . . . और सब बात पर उसके गौतम की पत्नी होने के गौरव का वह भार। . . .क्या जरा और मृत्यु भी इन स्नेह-बन्धनों को तोड़ सकते हैं या उन्हें किंचित्मात्र भी ढीला कर सकेंगे! ... और संन्यास-वैराग्य के बाद प्रयत्न करने पर भी क्या वे बन्धन किसी प्रकार भुलाए जा सकते हैं! ...यशोधरा का दिल बारम्बार भर आता था और वह कहने लगती थी -

''तब मेरी बाँह पकड़कर तुम मुझे अपने साथ यहाँ लाए थे और आज मुझे यहीं एकाकी छोड़ मेरा सारा जीवन-सुख लेकर तुम चुपचाप अँधियारे में भाग खड़े हुए। अपना तन दिया, मन न्यौछावर किया और अब तो यह जीवन भी हारे बैठी हूँ। गए - बीते सुखमय दिनों की वे प्यार-भरी स्मृतियाँ दिल में बिखरी पड़ी हैं। आँसू इन्हें निरन्तर सींचते हैं। नि:श्वासें उन्हें डुलाती रहीं और यों विरह की विश्व-वेदना के सुन्दर किन्तु कसक-भरे फूल खिलते हैं। दूसरों के दु:ख-दर्द की खोज कर उसे भरसक समझने वाले मेरे गौतम की दृष्टि से विश्व-वेदना के ये वियोगी फूल किस प्रकार छिपे रह सकें! ...मेरे हृदय को उन्होंने अपनाया था, फिर भी उसे नहीं टटोला। . . .अपनी वस्तु की उपेक्षा तो आप ही होती है।''

''किन्तु वे मुझसे कहकर क्यों नहीं गए! क्या उन्हें अपनी प्रियतमा अर्द्धांगिनी का भी विश्वास नहीं था! काँटों को तो कभी सुन्दर होते नहीं देखा या सुना है। तब मैं उनकी राह में कैसे काँटा बन जाती! ... किस प्यार से मैं उन्हें विदा देती! अन्तिम बार का वह प्यार ... और उनकी वह पद-धूलि। ...और कुछ न सही तो राहुल को तो एक बार प्यार कर जाते! एक सप्ताह का वह अबोध अशक्त बालक किस प्रकार उनको रोकने का प्रयत्न कर सकता।''

''आँखों में होकर तुम हृदय में समाए थे। किन्तु अपनी आँखों से तो तुमको जाते नहीं देखा; कानों ने तुम्हारी क्षीण होती पग-ध्वनि नहीं सुनी, तब तुम क्यों कर चल दिए! ...मेरे हृदय में बसी वह प्रेममयी सूरत तो आज भी वहाँ वैसी ही बनी हुई है। ... तो क्या सचमुच तुम हमें छोड़कर चल दिए!''

''आँसू! मेरे दिल के अन्तरतम से निकले हुए मेरे तप्त आँसू! यों कब तक अविरल बहते रहोगे! क्या यह धारा कभी सूख नहीं जाएगी! और अब मेरे इन आँसुओं को कौन देखेगा! ...नहीं! नहीं! मेरे प्रियतम के स्नेह-दीप को यह अर्ध्य तो निरन्तर चढ़ना ही चाहिए।''

''पंछी उड़ गया है, रात और दिन बीतते जा रहे हैं। वह तो भूला बैठा है, किन्तु उसका यह नीड़ तो अब भी उसी की प्रतीक्षा कर रहा है। क्या वह कभी इधर आएगा? और तब इसे देखकर भी क्या उसे इसके अपनेपन की कोई सुध नहीं आएगी? क्या जीवन-संध्या भी वह कहीं अन्यत्र ही बिताएगा? और इस जीवन की वह अज्ञात रात्रि... तब तक भी मेरे-प्यारे गौतम क्या यों ही भटकते रहेंगे? वहाँ कौन उनकी देखभाल करेगा?''

''पपीहा की 'पी कहाँ? पी कहाँ?' सुनकर वे श्यामल मेघ भी खिंचे चले आते हैं, अपनी शीतल सरस बूँदों को टपका कर उस प्यासे चातक को तृप्त करते हैं। वे काले बादल भी तो द्रवीभूत हो जाते हैं, परन्तु मेरे प्यार-भरे सजीव गौतम ने तो अब तक मेरी सुध नहीं ली ...''

''प्रियतम को मैं कहाँ खोजती फिरूँ? मैंने तो उन्हें कभी जाने को नहीं कहा था कि अब उन्हें मनाने को दौड़ पड़ूँ? भक्तों को तो कभी बैकुण्ठ का द्वार खटखटाते नहीं सुना है। ...भगवान भी जब भक्तों के पास दौड़े चले आते हैं तो क्या मेरे प्यारे गौतम लौटकर यहाँ नहीं आएँगे? राहुल की सुधि भी क्या उन्हें कभी नहीं सताएगी? ए वनवासी! तूने ही स्वयं जोड़ा था यह सारा नाता-रिश्ता तो अब क्यों उस सबको तू ही भूले बैठा है?''

''गोपियों का वह नाथ योगीश्वर होकर भी संन्यासी नहीं बना था। तब हे गोपेश्वर! तुम्हारे लिए ही यह बनवास क्यों अत्यावश्यक हो गया है? ...और गोपियों को उपदेश देने को आकर उद्धव ने तो उनकी विरह-व्यथा सुनी थी। परन्तु गौतम तो अकेले ही हैं, मैं किसे अपनी वियोग-वेदना सुनाऊँ ? वह विरक्त तपस्वी न तो भौंरों की गुनगुनाहट ही सुनेगा और न मेघ के साथ भेजे गए सन्देश ही उस योगी तक पहुँच पाएँगे। किन्तु मेरे प्यारे पवन, क्या तुम मेरे हृदयताप को उस तक न पहुँचा सकोगे? हिमालय की छाँह में रह कर भी मेरा यह ताप किसी प्रकार घटता नहीं है। मेरे इस वियोग से यदि संसार को चिर-संयोग प्राप्त हो सके, मेरे इस उजड़े घर से निकले चिर-सुख के अमृत की वह न रुकने वाली धारा... परन्तु आज तो इन प्यासे नयनों से तप्त आँसुओं का ही झरना बह रहा है। ...और क्या वियोगी हृदय की ये नि:श्वासें भी कभी प्यार की ठण्डी दुलारी बयार बन सकेंगी? ...मैं, तो निरन्तर आह और आँसू के इस भयंकर हलाहल को ही पीती रहती हूँ।''

''वह तो उधर तप कर रहे हैं और मैं यहाँ अपना ताप लिए बैठी हूँ। नर-नारी के इस तप-ताप को कौन सह सकता है? ... किन्तु मेरी वे प्यार भरी सुख-स्मृतियाँ तो इस तप-ताप में भी हरी बनी हुई हैं, लहलहाती रहती हैं और मेरे इस सूने जीवन को अधिकाधिक वेदनामय बनाती जाती हैं।''

''तो क्या यह जीवन यों एकाकी ही बीत जाएगा? मेरी जीवन-धारा यों उपेक्षित आप-ही-आप अंधियारे में ही बढ़ती जाएगी। बहता हुआ यह जीवन और ढलकते हुए वे तप्त आँसू ... उनके साथ क्या-क्या नहीं बह निकलता है? गई रातें फिर आने की नहीं। बीती जवानी कभी भूलकर भी कहीं लौटी है क्या! तब गए हुए मेरे प्यारे किन्तु विरक्त गौतम ही क्यों कर वापस आएँगे? और लौटने पर क्या पहले के से ही होंगे? इन बीती रातों का मेरा यह वियोग और महीनों-बरसों का उनका वह वैराग्य ....।''

''अब तो मृत्यु भी आकर्षक बन गई है। वियोग की व्यथा ने उस कंकाल को भी मेरा प्रिय बना दिया है। मृत्यु का यह आकर्षण और मरकर जीवन में सुख पाने का यह सुअवसर ... परन्तु लौटकर यदि गौतम तब कभी यहाँ आए तो यहाँ कौन उनका स्वागत करेगा? मरने की आज्ञा ही गौतम से मैंने कहाँ ली? ... नहीं! नहीं! मेरी प्यारी मौत ... मुझे तो वियोग

की यह व्यथा और विरह का यह ताप ही अधिक सुखद होंगे क्योंकि तब तो फिर भी बनी रहेगी 'पिया दरस की (वह) आस'।''

और उधर बरसों की तप-साधना, असहनीय कष्टों एवं विरोधी मार के भरसक प्रयत्नों के बाद ही जब सिद्धार्थ गौतम को बुद्धत्व की प्राप्ति हुई, तब भी वह निरन्तर घूमने वाले चक्कर से किसी प्रकार नहीं निकल पाए। जीवन-चक्र से छुटकारा पाने के लिए उन्हें धर्म-चक्र को अपनाना पड़ा .... वे सिद्धार्थ, बुद्ध परिव्राजक, भिक्षुक बनकर पुनः संसार को लौटे और घर-घर जाकर द्वार-द्वार भीख माँगने लगे। किन्तु विरहणी यशोधरा का जीवन-प्रवाह ... वह तो पूर्ववत् ही बहता रहा।

''और उस रात के गए वे अब तक लौटकर नहीं आए! कितने वसंत खिले और यों ही अनदेखे मुरझा गए! न जाने कितने सावन सूखे ही बीत गए! भादों की वे अँधियारी बरसाती रातें ... मेरे इस निस्संग को तो वे और भी सूना और रसहीन बनाती रही हैं। ये गृहद्वार भी तब से खुले पड़े हैं! उनका स्वागत करने को अब भी फड़फड़ा रहे हैं। क्या वे कभी लौट कर भी आवेंगे!''

''माँ! तूने नहीं सुना क्या ? पिताजी कपिलवस्तु आ रहे हैं। नगर में पर्यटन करेंगे, इन राज-प्रसादों में भी उनका प्रवचन होगा, धर्म का उपदेश देंगे और तब भिक्षा ....''। राहुल की बात पूरी होने नहीं पाई।

''हाँ, बेटा!'' तथागत आएँगे किन्तु ... हमारे वे कहाँ आ रहे हैं? इन्होंने तो बुद्धत्व प्राप्त किया है। इनका अब कौन अपना-पराया है? इस घर-बार से भी उनका क्या सम्बन्ध? नहीं ... नहीं ... मेरे प्राण-प्रिय गौतम वापस नहीं आ रहे हैं। ... वे हमें क्यों भुला बैठे हैं ... वे तो कभी भी ऐसे नहीं थे।''

''. . . परन्तु प्यारे राहुल! बता तो सही मुझे यह किसने भुलावा दिया है। तू तो एक राजकुमार का लाड़ला और शक्तिशाली राज्य का उत्तराधिकारी है। तुझे कौन एक भिक्षुक संन्यासी का त्यक्त पुत्र बता रहा है? तू किसे अपना पिता माने बैठा है? ...'' यशोधरा का कण्ठ रुँध गया और सुदूर क्षितिज की ओर ताकती हुई उसकी उन तरसती आँखों में आँसू भर आए।

''वे स्वयं चले गए थे, परन्तु उनकी वह प्रेम-रसपूर्ण मूर्ति, उनका वह प्रणयी-स्वरूप आज भी मेरे हृदय में समाया है। अपने सूने जीवन में उससे कितनी सान्त्वना प्राप्त होती रही है। ...परन्तु इन तथागत से तो मेरा यह रहा-सहा स्मृति-सुख भी नहीं देखा गया। उसे भी छीनने वे आज यहाँ चले आ रहे है। किस प्यार और किस यत्न से मैंने इस युग भर अपने हृदय के अन्तरतम में उसे छिपाए रखा था। यह सुगत अब उसे भी यों नहीं रहने देगा। किस प्रकार मैं उनके इस नए स्वरूप को अपना सकूँगी? दूसरों को मुक्ति और चिर-सुख देने को समुत्सुक वे बुद्ध आज अपनी प्रियतमा के इस सुखावशेष को मिटाने के लिए आने वाले हैं। ...क्या यह भी बुद्ध कुल की परिपाटी है?''

''मेरे प्रियतम आज उसी नगरी, नहीं - नहीं इन्हीं राजप्रासादों में आए हैं। कुछ ही पदों की दूरी है। आँखें उनके दर्शन को तरस रही हैं, जी ललचा रहा है, ... परन्तु नहीं! गौतम तो चोरी-छिपे रात के अँधियारे में बिना कहे ही निकल गए थे और जिन्हें अपना सर्वस्व अर्पण किया, उन्हें आज संन्यासी वेश में झोली फैलाए भिक्षुक बना कैसे देख सकूँगी? ... मेरी ओर से तो उन्होंने मुँह फेरा था, तब क्यों न वही मुझे हेरे? ... प्रेम-प्रणय को भी तो वह स्वयं ही आए थे, फिर आज क्यों मैं उनके पास जाऊँ? ...तब वह प्रेम की भीख माँगने आए थे और आज तो वह सचमुच भिक्षुक बन गए हैं। आज मेरे पास उन्हें देने को रह ही क्या गया है। फिर भी राजरानी से उस भिक्षुक को क्या चाहिए? इतनी दूर से पाँवों पैदल चलकर वह आए हैं, तब कुछ और आगे क्यों नहीं ?''

मार पर विजयी होने वाले तथागत को इस तपस्विनी के आगे झुकना ही पड़ा। ... और अनजाने बुद्ध को एकाएक

अपने सामने देखकर युग-युग का उसका वह रोषपूर्ण मान, उसका वह रूठना एकबारगी ही विलीन हो गए, बरसों से सोचे हुए अपने वे सारे उपालंभ भी वह भूल गई। अपनी उस मूक साधना और आत्मा के युग भर के इस विरह-प्रणय को यों सफल होते देखकर वह सारी सुध-बुध खो बैठी। अपने जीवन सर्वस्व को पुन: अपने सम्मुख देखकर एकबारगी वह आत्म-विभोर हो गई। दर्शन-सुख-भावना की उस बाढ़ में उसकी सारी वेदना डूबती सी जान पड़ी। अपने प्रियतम के चरणों में सिर रखकर वह रो पड़ी।

किन्तु प्रेम-प्रणय के उस पुराने प्रार्थी ने इस बार सचमुच भिक्षुक बन कर आज फिर अपनी झोली प्रियतमा के ही सम्मुख फैलाई। तब तो उस नारी-हृदय की सारी उदारता उमड़ पड़ी, उसका भिक्षा-पात्र भर दिया, अपने सर्वस्व राहुल को भी दान में देने से वह यत्किंचित् भी नहीं हिचकी, और उस पर भी वह अनजाने पूछ बैठी - ''क्या और भी कुछ?''

सकुचाते हुए बुद्ध ने उत्तर दिया - ''तब नहीं ले सका था, सो वर्षों बाद अब ही सही, विदा देते समय आज चिर-वियोग की भीख भी देती जाओ।''

अभ्यास

अति लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. यशोधरा दु:खी क्यों थी?
2. जीवन-सागर के मंथन से निकले चिर-वियोग के हलाहल को किसने पिया था?
3. गौतम कहाँ चले गए थे?
4. गौतम बुद्ध ने यशोधरा से भिक्षा में क्या माँगा ?

लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. ''राहुल, पिता के जीवित रहते भी अनाथ हो गया'' लेखक ने यह कथन किस संदर्भ में और क्यों कहा?
2. हिमालय की छाँह में रह कर भी यशोधरा का ताप पिघलता क्यों नहीं है?
3. यशोधरा मृत्यु को भी आकर्षक क्यों मान रही थी?
4. बुद्ध को अपने सामने देख यशोधरा सुध-बुध क्यों खो बैठी?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

1. बुद्ध को तपस्विनी यशोधरा के आगे क्यों झुकना पड़ा ?
2. गौतम बुद्ध के चले जाने के बाद निम्नलिखित रूपों में यशोधरा की भूमिका अपने शब्दों में लिखिए -
    1. माँ के रूप में
    2. पत्नी के रूप में
    3. भारतीय नारी के रूप में
3. ''क्या वियोगी हृदय की ये नि:श्वासें भी कभी प्यार की ठण्डी दुलारी बयार बन सकेंगी?'' यशोधरा की इस पीड़ा को अपने शब्दों में व्यक्त कीजिए।
4. विरहिणी और उदास यशोधरा की मनोदशा का वर्णन कीजिए।

भाषा-अध्ययन

1. **निम्नलिखित सामासिक शब्दों का विग्रह कर समास का नाम लिखिए -**

   नीलकंठ, दु:ख सागर, जीवन-सागर, जीवन-संध्या, नर-नारी, धर्मचक्र, राज-प्रासाद, स्मृति-सुख

2. **निम्नलिखित शब्दों में से तत्सम, तद्भव एवं देशज शब्द छाँटिए -**

   दिवस, वियोगी, सूर्य, लज्जा, अँधियारे, जरा, पत्नी, आँखे, अधर, विरह, भग्न, बैरिन, सच्चा, बयार, तरस, उमड़

3. **निम्नलिखित वाक्यों को दिए गए निर्देशानुसार बदलिए -**

   1. सूर्य पश्चिम में अस्त नहीं होता है। (विधानवाचक वाक्य)
   2. बहुत लम्बी रेलगाड़ी है। (विस्मयादिवाचक वाक्य)
   3. तुम पढ़ने कब जाओगे? (आज्ञावाचक वाक्य)
   4. माला नहीं नाचेगी। (प्रश्नवाचक वाक्य)

ध्यान से पढ़िए -

''स्नेह-दीप से जगमगाते नवल-नयनों की द्युति क्षीण होने लगी और उसकी ये अधखुली आँखे अब ऋतुराज की ओर भी नहीं देखती थीं।''

अब समझिए -

उपर्युक्त पंक्ति का भाव-विस्तार निम्नानुसार किया जाएगा - यशोधरा के प्रेम के दीपक रूपी नेत्रों की ज्योति मानो मद्धिम पड़ गई है और इसी कारण, ये नेत्र जो अधखुले हैं, ऋतुराज वसंत की शोभा को भी नहीं देखना चाहते। लेखक ने अपनी काव्य कल्पना से नेत्रों को स्नेह का दीपक बताया है। ये नेत्र विरह के कारण चिंतामग्न हैं। इसी कारण ये नयन प्रकृति के शृंगार श्रेष्ठ ऋतुराज वसन्त के अनिंद्य सौन्दर्य को भी नहीं देखना चाहते। नयनों में तो कोई और ही बसा है, वे किसी और के ध्यान में हैं।

इस प्रकार जब किसी वाक्य का भाव हम सरल शब्दों में प्रकट करते हैं तब उसे भाव-विस्तार कहते हैं।

और भी समझिए -

भाव-विस्तार के वाक्य सामासिक होने के कारण इनका अर्थ विस्तार करने से लेखक का आशय स्पष्टत: समझ में आता है। ये वाक्य भाव, विचार और कल्पना से संयुक्त होने के कारण मन को प्रफुल्लित करते हैं। वाक्य बार-बार पढ़ने को जी चाहता है। कविता, निबंध और नाटक आदि के अंश और संवाद इसी प्रकार कल्पना और भावों से संयुक्त होने के कारण भाव विस्तार की अपेक्षा रखते हैं।

भाव-विस्तार या भाव-पल्लवन किसी भी सूक्ति, वाक्य या गद्यांश को समझने में सहायक है। यह छात्रों की प्रतिभा और अभ्यास पर निर्भर करता है कि वह किसी गद्यांश या वाक्य का भाव-विस्तार कितना सुरुचिपूर्ण और सटीक लिखते हैं। भाव-विस्तार में निपुणता अभ्यास पर निर्भर है।

यह भी जानिए -

- भाव-विस्तार मूल प्रसंग से हटकर न हो।
- इसमें अप्रासंगिक विचार न आए।
- भाव-विचार सुसंगठित और क्रम से हो।
- भाषा सरल व सुगम हो।
- भाव-विस्तार में अनावश्यक टिप्पणी या समीक्षा न हो।

4. निम्नलिखित वाक्यों का भाव विस्तार कीजिए -

अ. ''अपने सारे उजाले को लेकर भी क्या वह सूर्य यशोधरा के उस वियोगी सूने दिल के निराशापूर्ण अन्धकार को यत्किंचित् भी दूर कर सकता था?''

ब. ''इस कालकूट को पीकर भी यशोधरा नील-कण्ठा नहीं हुई, कैलाशवासी शंकर भी यह देखकर लज्जा के मारे सकुचा गए।''

स. ''वह विरक्त तपस्वी न तो भौरों की गुनगुनाहट ही सुनेगा और न मेघ के साथ भेजे गए सन्देश ही उस योगी तक पहुँच पाएँगे।''

योग्यता विस्तार -

1. पाठ के आधार पर 'यशोधरा का त्याग' अथवा 'महात्मा बुद्ध की साधना' ऐसे ही किसी विषय पर एक चित्रकला प्रतियोगिता का आयोजन कीजिए।
2. गौतम बुद्ध का घर छोड़कर जाना आपकी दृष्टि में उचित है या अनुचित। इस विषय पर कक्षा में परिचर्चा कीजिए।
3. हिन्दी साहित्य में अन्य लेखकों ने भी गद्यकाव्य लिखे हैं। जैसे रायकृष्णदास आदि। उनके गद्य काव्यों को ढूँढकर पढ़िए।

शब्दार्थ

यत्किंचित = थोड़ा बहुत
परिव्राजक = साधु
कालकूट = ज़हर, विष
त्यक्त = त्यागा हुआ
प्रगाढ़ = बहुत अधिक
समुत्सुक = उत्साहित
किंचित मात्र = थोड़ा सा
अर्घ्य = जल देना
विरक्त = उदासीन
हलाहल = विष
तथागत = गौतम बुद्ध
निष्ठुर = कठोर
सुगत = अच्छी गति
द्युति = प्रकाश, कान्ति
मार = कामदेव
व्यग्र = उतावला, व्याकुल
निस्संग = तटस्थ
भग्न = टूटा
अन्तरतम = अन्तर्मन, हृदय
जगन्माता = जगत की माता
उपालंभ = शिकायत, उलाहना
अन्यत्र = दूसरी जगह

❋ ❋ ❋

खेल

जैनेन्द्र कुमार

लेखक परिचय :

कहानी-कला में चरित्र-सृष्टि के माध्यम से अपनी विशिष्ट चमक बनाने वाले कहानीकार जैनेन्द्र कुमार का जन्म सन् 1905 ई. में अलीगढ़ के एक साधारण परिवार में हुआ था। उनकी शिक्षा-दीक्षा ब्रह्मचर्य आश्रम में हुई। वे संभवत: एकमात्र ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने लेखन को ही आजीविका का आधार बनाया। उनका निधन 24 दिसंबर 1988 को हुआ।

जैनेन्द्र द्वारा लिखे गए उपन्यास हैं : 'परख', 'सुनीता', 'कल्याणी', 'त्यागपत्र', 'सुखदा', 'विवर्त', 'अनामस्वामी', 'मुक्तिबोध'। 'एक रात', 'वातायन', 'दो चिड़िया', 'पाजेब', 'नीलम देश की राजकन्या', 'फाँसी', 'स्पर्द्धा' आदि उनके कथा संग्रह हैं।

जैनेन्द्र की कथा-सृष्टि में जीवन के संघर्ष, वय: सन्धि की भावुक-मृदुल भावनाएँ, घटनाएँ देखी जा सकती हैं। इनके वर्णन में यथातथ्यता को बनाये रखा गया है साथ ही पात्रों का चरित्र चित्रण देश-काल और वातावरण के अनुसार सूक्ष्मता से उकेरा गया है। भाषा-संयोजन के प्रति जैनेन्द्र सर्वत्र सजग प्रतीत होते हैं। कथोपकथनों द्वारा कथा में जीवंतता भरने की कला जैनेन्द्र ने खूब साधी है।

जैनेन्द्र कुमार मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि को लेकर लिखने वाले कथाकार हैं। साहित्यिक रचनाओं के व्यापक फलक और विविधता की दृष्टि से उनकी तुलना प्रेमचन्द से की जाती है। प्रेमचन्द का रचना-कर्म ग्रामीण समाज और उनके शोषण पर केन्द्रित है तो जैनेन्द्र शहरी समाज की मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों पर कलम चलाते हैं। उनका तर्क-संगत चिन्तन और सरल, सुबोध अभिव्यक्ति-कौशल, कथा को मार्मिक और प्रभावपूर्ण बनाते हैं। इसी विशिष्ट रचना-कौशल और सामाजिक संबद्धता के बल पर उन्होंने हिन्दी साहित्य में विशिष्ट स्थान बनाया है।

केन्द्रीय भाव :

बाल मनोविज्ञान पर केन्द्रित कहानियों में 'खेल' कहानी का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। यह कहानी अपनी पात्र संक्षिप्तता एवं घटना की स्थान केन्द्रीयता के कारण अपने कलेवर में आकर्षक कहानी है। इस कहानी में समय संयोजन की भी संक्षिप्तता कहानी को अनावश्यक विस्तार प्रदान नहीं करती है। गंगा के किनारे बालिका सुरबाला रेत में भाड़ बनाती है- वहीं पास में बालक मनोहर गंगा की लहरों से खेल रहा है। दोनों बाल मित्र हैं। सुरबाला रुचिपूर्वक भाड़ बनाती है और उस पर कुटियों की सांकेतिक निर्मिति करती है। उसमें तिनका स्थापित कर धुआँ निकलने की चिमनी का भी निर्माण करती है। अपनी इस सृष्टि पर वह मुग्ध है। वह मनोहर को बुलाती है। मनोहर आता है और सुरबाला के उस परम प्रिय भाड़ को पैर की ठोकर मारकर नष्ट कर देता है। मनोहर की इस उद्दण्डता से सुरबाला को कष्ट होता है। मनोहर प्रतीक्षा में था कि सुरबाला रोएगी, उसे भला बुरा कहेगी लेकिन वह ऐसा कुछ नहीं करती है। मनोहर से वह नहीं बोलती है। सुरबाला का हठ मनोहर को बाध्य करता है कि वह उसका भाड़ बनाकर दे। मनोहर भाड़ बनाता है और सुरबाला उसे उसी तरह से पैर मारकर तोड़ देती है जैसे मनोहर ने उसका भाड़ तोड़ा था।

कहानी में बाल मनोविज्ञान के अंतर्गत यह स्पष्ट किया गया है कि बच्चों की कल्पना, उनके यथार्थ का बहुत बड़ा आधार होती है। वे मानो कल्पना में नहीं जीते, कल्पना ही उनका यथार्थ है। क्षणभंगुरता और नश्वरता का बोध उन्हें नहीं होता है। कहानी में स्त्री प्रकृति और पुरुष प्रकृति की सूक्ष्म संवेदनाएँ और भावनाएँ बहुत

अच्छे ढंग से व्यक्त की गई हैं। सुरबाला की रचनात्मक कला को लेखक ने उसके भाड़ निर्माण में व्यक्त किया है। मानो घर बनाना तो स्त्री ही जानती है। स्त्री संवेदना का एक उदाहरण लेखक ने उस समय प्रस्तुत किया है जब सुरबाला, मनोहर के ऊपर न व्यथा प्रकट करती है और न क्रोध। लेखक लिखते हैं बालिका में व्यथा और क्रोध कभी का खत्म हो चुका था, वह तो पिघलकर बह चुका था। यह कुछ और ही भाव था, यह एक उल्लास था, जो व्याजकोप का रूप धर रहा था। दूसरे शब्दों में यह स्त्रीत्व था। सुरबाला के भीतर बदला लेने का भी भाव है - इसीलिए वह मनोहर द्वारा निर्मित भाड़ को तोड़कर प्रसन्न होती है। स्त्री शक्ति और संवेदना की झलक इन छोटे-छोटे वाक्यों में दर्शाकर लेखक ने सुरबाला के चरित्र को प्रामाणिक बनाया है।

बच्चों के क्षणिक विषाद, क्षणिक प्रतिवाद और क्षणिक अमर्ष के साथ ही उनके क्षणिक द्वेष को बहुत सहजतापूर्वक प्रस्तुत कहानी में व्यक्त किया गया है। कहानी की भाषा सहज और संवाद छोटे-छोटे हैं।

खेल

मौन-मुग्ध संध्या स्मित प्रकाश से हँस रही थी। उस समय गंगा के निर्जन बालुकास्थल पर एक बालक और बालिका अपने को और सारे विश्व को भूल, गंगातट के बालू और पानी को अपना एकमात्र आत्मीय बना, उनसे खिलवाड़ कर रहे थे।

प्रकृति इन निर्दोष परमात्म-खण्डों को निस्तब्ध और निर्निमेष निहार रही थी। बालक कहीं से एक लकड़ी लाकर तट के जल को छटा-छट उछाल रहा था। पानी मानों चोट खाकर भी बालक से मित्रता जोड़ने के लिए विह्वल हो उछल रहा था। बालिका अपने एक पैर पर रेत जमाकर और थोप-थोपकर एक भाड़* बना रही थी।

बनाते-बनाते भाड़ से बालिका बोली- देख, ठीक नहीं बना तो मैं तुझे फोड़ दूँगी। फिर बड़े प्यार से थपका-थपका कर उसे ठीक करने लगी। सोचती जाती थी- इसके ऊपर मैं एक कुटी बनाऊँगी, वह मेरी कुटी होगी। और मनोहर ?... नहीं वह कुटी में नहीं रहेगा, बाहर खड़ा-खड़ा भाड़ में पत्ते झोंकेगा। जब वह हार जाएगा, बहुत कहेगा, तब मैं उसे अपनी कुटी के भीतर ले लूँगी।

मनोहर उधर अपने पानी से हिल-मिलकर खेल रहा था। उसे क्या मालूम कि यहाँ अकारण ही उस पर रोष और अनुग्रह किया जा रहा है।

बालिका सोच रही थी- मनोहर कैसा अच्छा है, पर वह दंगई बड़ा है। हमें छेड़ता ही रहता है। अब के दंगा करेगा, तो हम उसे कुटी में साझी नहीं करेंगे। साझी होने को कहेगा तो उससे शर्त करवा लेंगे, तब साझी करेंगे। बालिका सुरबाला सातवें वर्ष में थी। मनोहर कोई दो साल उससे बड़ा था।

बालिका को अचानक ध्यान आया- भाड़ की छत तो गरम होगी। उस पर मनोहर रहेगा कैसे ? मैं तो रह जाऊँगी। पर मनोहर जो जलेगा। फिर सोचा- उससे मैं कह दूँगी भई, छत बहुत तप रही है, तुम जलोगे, तुम मत आओ। पर वह अगर नहीं माना ? मेरे पास वह बैठने को आया ही तो ? मैं कहूँगी- भाई ठहरो, मैं ही बाहर आती हूँ... पर वह मेरे पास आने को जिद करेगा क्या ?... जरूर, करेगा, वह बड़ा हठी है... पर मैं उसे आने नहीं दूँगी। बेचारा तपेगा- भला कुछ ठीक है ! ज्यादा कहेगा, मैं धक्का दे दूँगी, और कहूँगी- अरे, जल जाएगा मूरख ! यह सोचने पर उसे बड़ा मजा-सा आया,

---

* भड़भूंजे की भट्टी जिसमें बालू गरम कर वह चना (चना) भूंजता है।

पर उसका मुँह सूख गया। उसे मानो सचमुच ही धक्का खाकर मनोहर के गिरने का हास्योत्पादक और करुण दृश्य सत्य की भाँति प्रत्यक्ष हो गया।

बालिका ने दो-एक बार पक्के हाथ भाड़ पर लगाकर देखा- भाड़ अब बिलकुल बन गया है। माँ जिस सतर्क सावधानी के साथ अपने नवजात शिशु को बिछौने पर लिटाने को छोड़ती है, वैसे ही सुरबाला ने अपना पैर धीरे-धीरे भाड़ के नीचे से खींच लिया। इस क्रिया में वह सचमुच भाड़ को पुचकारती-सी जाती थी। उसके पैर ही पर तो भाड़ टिका है, पैर का आश्रय हट जाने पर बेचारा कहीं टूट न पड़े! पैर साफ निकालने पर भाड़ जब ज्यों-का-त्यों टिका रहा, तब बालिका एक बार आह्लाद से नाच उठी।

बालिका एकबारगी ही बेवकूफ मनोहर को इस अलौकिक चातुर्य से परिपूर्ण भाड़ के दर्शन के लिए दौड़कर खींच लाने को उद्यत हो गई। मूर्ख लड़का पानी से उलझ रहा है, यहाँ कैसी जबर्दस्त कारगुजारी हुई है - सो नहीं देखता! ऐसा पक्का भाड़ उसने कहीं देखा भी है!

पर सोचा- अभी नहीं; पहले कुटी तो बना लूँ। यह सोचकर बालिका ने रेत की एक चुटकी ली और बड़े धीरे से भाड़ के सिर पर छोड़ दी। फिर दूसरी, फिर तीसरी, फिर चौथी। इस प्रकार चार चुटकी रेती धीरे-धीरे छोड़कर सुरबाला ने भाड़ के सिर पर अपनी कुटी तैयार कर ली।

भाड़ तैयार हो गया। पर पड़ोस का भाड़ जब बालिका ने पूरा-पूरा याद किया तो पता चला एक कमी रह गई। धुआँ कहाँ से निकलेगा ? तनिक सोचकर उसने एक सींक टेढ़ी करके उसमें गाढ़ दी। बस, ब्रह्माण्ड का सबसे सम्पूर्ण भाड़ और विश्व की सबसे सुन्दर वस्तु तैयार हो गई।

वह उस उजड्ड मनोहर को इस अपूर्व कारीगरी का दर्शन कराएगी, पर अभी ज़रा देख तो और ले। सुरबाला मुँह बनाए आँखें स्थिर करके इस भाड़-श्रेष्ठ को देख-देखकर विस्मित और पुलकित होने लगी। परमात्मा कहाँ विराजते है, कोई इस बाला से पूछे, तो वह बताए इस भाड़ के जादू में।

मनोहर अपनी 'सुरी-सुरो-सुर्री' को याद कर पानी से नाता तोड़, हाथ की लकड़ी को भरपूर जोर से गंगा की धारा में फेंक कर जब मुड़ा तब श्री सुरबाला देवी एकटक अपनी परमात्म-लीला के जादू को बूझने और सुलझाने में लगी हुई थीं।

मनोहर ने बाला की दृष्टि का अनुसरण कर देखा- महोदया जी बिलकुल अपने भाड़ में अटकी हुई हैं। उसने ज़ोर से कहकहा लगाकर एक लात में भाड़ का काम तमाम कर दिया!

न जाने क्या किला फतह किया हो, ऐसे गर्व से भरकर निर्दय मनोहर चिल्लाया- सुर्री रानी!

सुर्री रानी मूक खड़ी थीं। उनके मुँह पर जहाँ अभी एक विशुद्ध रस था, वहाँ अब एक शून्य फैल गया। रानी के सामने एक स्वर्ग आ खड़ा हुआ था। वह उन्हीं के हाथ का बनाया हुआ था और वह एक व्यक्ति को अपने साथ लेकर उस स्वर्ग की एक-एक मनोरमता और स्वर्गीयता को दिखलाना चाहती थी। हाँ, हंत! वही व्यक्ति आया और उसने अपनी लात से उसे तोड़-फोड़ डाला! रानी हमारी बड़ी व्यथा से भर गई।

हमारे विद्वान् पाठकों में से कोई होता तो उन मूर्खों को समझाता- ''यह संसार क्षणभंगुर है। इसमें दु:ख क्या और सुख क्या। जो जिससे बनाया है वह उसी में लय हो जाता है- इसमें शोक और उद्वेग की क्या बात है ? यह संसार जल का बुदबुदा है, फूटकर किसी रोज़ जल में ही मिल जाएगा। फूट जाने में ही बुदबुदे की सार्थकता है। जो यह नहीं समझते, वे दया के पात्र हैं। री मूर्खा लड़की, तू समझ। सब ब्रह्माण्ड ब्रह्म का है और उसी में लीन हो जायगा। इससे तू

किस लिए व्यर्थ व्यथा सह रही है ? रेत का तेरा भाड़ क्षणिक था, क्षण में लुप्त हो गया, रेत में मिल गया। इस पर खेद मत कर, इससे शिक्षा ले। जिसने लात मारकर उसे तोड़ा है वह तो परमात्मा का केवल साधन मात्र है। परमात्मा तुझे नवीन शिक्षा देना चाहते हैं। लड़की, तू मूर्ख क्यों बनती है ? परमात्मा की इस शिक्षा को समझ और परमात्मा तक पहुँचने का प्रयास कर। आदि-आदि।''

पर बेचारी बालिका का दुर्भाग्य, कोई विज्ञ श्रीमान् पण्डित तत्वोपदेश के लिए उस गंगा-तट पर नहीं पहुँच सके। हमें तो यह भी सन्देह है कि सुरी एकदम इतनी जड़ मूर्खा है कि यदि कोई परोपकार-रत पण्डित परमात्म-निर्देश से वहाँ पहुँचकर उपदेश देने भी लगते, तो वह उनकी बात को न सुनती और न समझती। पर, अब तो वहाँ निर्बुद्ध शठ मनोहर के सिवा कोई नहीं है और मनोहर विश्वतत्त्व की एक भी बात नहीं जानता।

उसका मन न जाने कैसा हो रहा है। कोई जैसे उसे भीतर-ही-भीतर मसोसे डाल रहा है। लेकिन उसने बनकर कहा- ''सुरो, दुत पगली! रूठती है ?''

सुरबाला वैसी ही खड़ी रही

''सुरी, रूठती क्यों है ?''

बाला तनिक न हिली।

''सुरी। सुरी!... ओ, सुरो।''

अब बनना न हो सका। मनोहर की आवाज हठात् कँपी-सी निकली।

सुरबाला अब और मुँह फेरकर खड़ी हो गई। स्वर के इस कम्पन का सामना शायद उससे न हो सका।

''सुरी,... ओ सुरिया! मैं मनोहर हूँ... मनोहर! मुझे मारती नहीं!'' यह मनोहर ने उसके पीठ पीछे से कहा और ऐसे कहा, जैसे वह प्रकट करना चाहता है कि वह रो नहीं रहा है।

''हम नहीं बोलते।'' बालिका से बिना बोले न रहा गया। उसका भाड़ शायद स्वर्गविलीन हो गया। उसका स्थान और बाला की सारी दुनिया का स्थान काँपती हुई मनोहर की आवाज ने ले लिया।

मनोहर ने बड़ा बल लगाकर कहा- ''सुरी, मनोहर तेरे पीछे खड़ा है। वह बड़ा दुष्ट है। बोल मत, पर उस पर रेत क्यों नहीं फेंक देती, मार क्यों नहीं देती! उसे एक थप्पड़ लगा- वह अब कभी कसूर नहीं करेगा।''

बाला ने कड़ककर कहा- ''चुप रहो जी!''

''चुप रहता हूँ, पर मुझे देखोगी भी नहीं!''

''नहीं देखते।''

''अच्छा मत देखो। मत ही देखो। मैं कभी सामने न आऊँगा, मैं इसी लायक हूँ।''

'कह दिया तुम से, तुम चुप रहो। हम नहीं बोलते।'

बालिका में व्यथा और क्रोध कभी का खत्म हो चुका था। वह तो पिघलकर बह चुका था। यह कुछ और ही भाव था। यह एक उल्लास था जो व्याजकोप का रूप धर रहा था। दूसरे शब्दों में यह स्त्रीत्व था।

मनोहर बोला- ''लो सुरी, मैं नहीं बोलता। मैं बैठ जाता हूँ। यहीं बैठा रहूँगा। तुम जब तक न कहोगी, न उठूँगा, न बोलूँगा।''

मनोहर चुप बैठ गया। कुछ क्षण बाद हारकर सुरबाला बोली– ''हमारा भाड़ क्यो तोड़ा जी ? हमारा भाड़ बना के दो!''

''लो अभी लो।''

''हम वैसा ही लेंगे।''

''वैसा ही लो, उससे भी अच्छा।''

''उसपे हमारी कुटी थी, उस पे धुएँ का रास्ता था।''

''लो सब लो। बताती न जाओ, मैं बनाता जाऊँ।''

''हम नहीं बताएँगे। तुमने क्यों तोड़ा ? तुमने तोड़ा, तुम्हीं बनाओ।''

''अच्छा, पर तुम इधर देखो तो।''

''हम नहीं देखते, पहले भाड़ बना के दो।''

मनोहर ने एक भाड़ बनाकर तैयार किया। कहा– ''लो, भाड़ बन गया।''

''बन गया ?''

''हाँ।''

''धुएँ का रास्ता बनाया ? कुटी बनाई ?''

''सो कैसे बनाऊँ– बताओ तो।''

''पहले बनाओ, तब बताऊँगी।''

भाड़ के सिर पर एक सींक लगाकर और एक-एक पत्ते की ओट लगाकर कहा– ''बना दिया।''

तुरन्त मुड़कर सुरबाला ने कहा– ''अच्छा, दिखाओ।''

'सींक ठीक नहीं लगी जी', 'पत्ता ऐसे लगेगा' आदि आदि संशोधन कर चुकने पर मनोहर को हुक्म हुआ–

''थोड़ा पानी लाओ, भाड़ के सिर पर डालेंगे।''

मनोहर पानी लाया।

गंगाजल से कर पात्रों द्वारा वह भाड़ का अभिषेक करना ही चाहता था कि सुर्रो रानी ने एक लात से भाड़ के सिर को चकनाचूर कर दिया!

सुरबाला रानी हँसी से नाच उठीं। मनोहर उत्फुल्लता से कहकहा लगाने लगा। उस निर्जन प्रान्त में वह निर्मल शिशु-हास्य-रव लहरें लेता हुआ व्याप्त हो गया। सूरज महाराज बालकों जैसे लाल-लाल मुँह से गुलाबी-गुलाबी हँसी हँस रहे थे। गंगा मानो जान-बूझकर किलकारियाँ-मार रही थीं। और- और वे लम्बे ऊँचे-ऊँचे दिग्गज पेड़ दार्शनिक पंडितों की भाँति सब हास्य की सार-शून्यता पर मानो मन-ही-मन गम्भीर तत्त्वावलोकन कर, हँसी में भूले हुए मूर्खों पर थोड़ी दया बख्शना चाह रहे थे!

अभ्यास

अति लघु उत्तरीय प्रश्न –

1. बालक और बालिका किन दो चीजों को आत्मीय बना उनसे खिलवाड़ कर रहे थे ?
2. भाड़ से क्या तात्पर्य है ?
3. भाड़ में धुएँ का रास्ता और कुटी किस प्रकार बनाई गई ?
4. सुरबाला की दृष्टि में परमात्मा कहाँ विराजते हैं ?
5. भाड़ का अभिषेक करने के पूर्व सुर्रो रानी ने क्या किया ?

लघु उत्तरीय प्रश्न –

1. बालिका मनोहर के बारे में क्या सोच रही थी ?
2. बालिका द्वारा भाड़ बनाने की प्रक्रिया समझाइए।
3. सुरबाला द्वारा निर्मित भाड़ को देखते ही मनोहर की त्वरित प्रतिक्रिया क्या थी ?
4. भाड़ तोड़ने पर पश्चाताप स्वरूप मनोहर ने सुर्रो से क्या कहा ?
5. 'हमारा भाड़ क्यों तोड़ा जी ? हमारा भाड़ बना के दो ?' के जवाब में मनोहर ने क्या किया ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

1. ''मनोहर विश्व तत्व की एक भी बात नहीं जानता'' कहानी लेखक जैनेन्द्र कुमार ने ऐसी किन-किन बातों की ओर संकेत किया है?
2. मनोहर और सुरबाला ने एक दूसरे के बने भाड़ तोड़ दिए। फिर भी वे अंत तक सहज क्यों बने रहे ?
3. ''एक लात में भाड़ का काम तमाम करना'', के संदर्भ में लेखक के दार्शनिक विचार लिखिए ।
4. खेल कहानी का उद्देश्य लिखिए।
5. मनोहर और सुरबाला के बाल स्वभाव की दो-दो विशेषताएँ बतलाइए।

भाषा अध्ययन

1. निम्नलिखित शब्दों के पर्यायवाची शब्द लिखिए –

विश्व, पत्ता, कुटी, उल्लास, पेड़, सूरज

2. दिए गए समास युक्त पदों का विग्रह कर नाम लिखिए –

स्वर्गविलीन, व्याजकोप, बालक-बालिका, महात्मा, त्रिलोक

3. **'पूर्व' शब्द में अ उपसर्ग लगाकर अपूर्व शब्द बना है। इसी प्रकार निम्नलिखित उपसर्गों से बनने वाले दो-दो शब्द लिखिए -**

अति, अप, वि, सु, सम, परि, उप, अव, दुर, प्रति

4. **दिए गए वाक्यांशों के लिए एक शब्द लिखिए -**

- दर्शन शास्त्र को जानने वाला।
- किसी अन्य पर किया गया उपकार।
- जिसके मन में दया भाव नहीं हो।
- जो इस लोक का न हो।
- जिसका कोई दोष नहीं हो।

समझिए -

''सुरबाला रानी हँसी से नाच उठीं। मनोहर उत्फुल्लता से कहकहा लगाने लगा। उस निर्जन प्रान्त में वह निर्मल शिशु-हास्य-रव लहरें लेता हुआ व्याप्त हो गया।''

यह कथन खड़ी बोली हिन्दी का है। हिन्दी की अनेक क्षेत्रीय बोलियाँ भी हैं जिनमें उस क्षेत्र के लोकगीत और लोककथाएँ मिलती हैं।

मध्यप्रदेश में बुन्देली, बघेली, निमाड़ी और मालवी मुख्य बोलियाँ हैं। बुन्देली - ग्वालियर, डबरा, सागर, बीना, दमोह, दतिया, नौगाँव, नरसिंहपुर, टीकमगढ़, छतरपुर, पन्ना, होशंगाबाद आदि स्थानों पर बोली जाती है। **बघेली**- इसका केन्द्र रीवा है। पन्ना, सतना, सीधी और शहडोल आदि जिलों में बोली जाती है। **मालवी**- इन्दौर, उज्जैन, देवास, नागदा, रतलाम, बड़नगर, अशोकनगर, राजगढ़, शुजालपुर, गुना, नीमच आदि शहरों के आस-पास बोली जाती है। **निमाड़ी**- निमाड़ क्षेत्र में बोली जाती है। खंडवा इसका केन्द्र है। खरगोन, महेश्वर, हरदा, नेपानगर ओंकारेश्वर आदि स्थानों पर बोली जाती है।

आकाशवाणी और दूरदर्शन, रेडियो तथा टी.वी. से क्षेत्रीय भाषा में कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। क्षेत्रीय बोली के साहित्यकार, लोककलाकार और संगीतकार रेडियो और दूरदर्शन से अपनी बोली में लोक गीत प्रस्तुत कर उसे जीवित रखने का उपक्रम करते हैं। वस्तुतः बुन्देली, बघेली, मालवी और निमाड़ी में हमारी प्राचीन लोक परम्पराएँ जीवित हैं। लोक जीवन के उच्च आदर्श यहाँ के उपलब्ध साहित्य में देखने को मिलते हैं।

5. **मध्यप्रदेश की मुख्य बोलियाँ कौन-कौन सी है ?**

6. **दूरदर्शन तथा आकाशवाणी लोक भाषा के अथवा बोली के विकास में किस प्रकार सहायक हैं ?**

और भी जानिए -

अ. मध्यप्रदेश से प्रकाशित होने वाली प्रमुख पत्रिकाओं में - 'साक्षात्कार', 'अक्षरा', 'साहित्यकार', 'वीणा', 'ईसुरी', 'अक्षत', 'स्नेह', देवपुत्र, 'राग भोपाली', 'आस-पास', 'पहल', 'वसुधा' आदि मुख्य हैं।

ब. इसके अतिरिक्त पत्रिकाओ के त्रैमासिक और वार्षिक अंक भी निकलते हैं। स्थानीय स्तर पर अनेक साहित्य प्रेमी पत्रिका निकालकर साहित्य सेवा कर रहे हैं।

स. हिन्दी के दैनिक समाचार पत्रों में दैनिक भास्कर, दैनिक जागरण, नव भारत, नई दुनिया, राज एक्सप्रेस, चौथा संसार, सांध्य प्रकाश आदि मुख्य हैं।

7. अपने क्षेत्र से प्रकाशित हिन्दी मासिक पत्रिकाओं के नाम लिखिए।

8. किन्ही चार दैनिक समाचार पत्रों के नाम लिखिए।

योग्यता विस्तार

1. आपने नदी की रेत में कोई खेल खेला है ? अपने छोटे भाई-बहन को साथ ले जाकर उनसे भाड़ या रेत का घर बनाने को कहिए।
2. 'संसार क्षणभंगुर है' इस विषय पर कबीर आदि कवियों के दोहे संग्रहीत करें।
3. 'खेल-खेल में बच्चे झगड़ते हैं फिर एक दूसरे के मित्र बन जाते हैं।' इस सूत्र वाक्य (थीम) पर एक लघुकथा अथवा लघुनाटक लिखिए।
4. दूरदर्शन तथा आकाशवाणी से प्रसारित क्षेत्रीय भाषा के कार्यक्रम सुनिए तथा लोक गीतों व लोक कथाओं का संकलन कीजिए।
5. अपने शिक्षकों की तथा भाषा अध्यापक की सहायता से भाषा में हस्तलिखित पत्रिका निकालिए तथा अपने भीतर छिपे साहित्यकार को विकसित होने के अवसर प्रदान कीजिए।

शब्दार्थ

बालुका स्थल = बालू रेत वाली भूमि

शठ = स्वभावत: दुष्ट, मूर्ख

निर्निमेष = एकटक, लगातार, जिसकी पलक न गिरे

व्याजकोप = क्रोध का दिखावा, झूठा गुस्सा।

❋ ❋ ❋

रंगोली

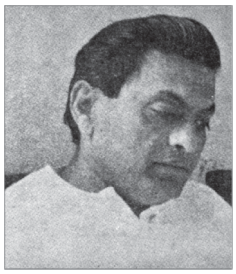

डॉ. शिवप्रसाद सिंह

लेखक परिचय :

हिन्दी साहित्य में अपनी बहुमुखी प्रतिभा और लेखन-सामर्थ्य का परिचय देने वाले डॉ. शिवप्रसाद सिंह का जन्म 19 अगस्त, 1929 में हुआ था। अपनी अध्येता वृत्ति और मननशीलता के कारण वे शीघ्र ही लेखन में क्रियाशील हो उठे और साहित्य-प्रेमियों में उन्होंने अपना स्थान बना लिया। वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष रहे और उसी पद से सेवानिवृत्त हुए।

'चतुर्दिक', ''शिखरों का सेतु', 'कस्तूरीमृग' उनके निबन्ध संग्रह, 'मुरदा सराय', 'कर्मनाशा की हार' कहानी संग्रह, 'अलग-अलग वैतरणी', उपन्यास, 'घाटियाँ गूँजती हैं' नाटक, ''कीर्तिलता, 'विद्यापति' समीक्षा कृतियाँ हैं। उन्होंने 'शिवालिक' और 'कल्पना' का संपादन भी किया।

'अलग-अलग वैतरणी' उपन्यास ने उन्हें साहित्य में चर्चा का केन्द्र बनाया। कथा संसार में इस उपन्यास के अलावा उनकी कहानियाँ निरन्तर अतीत से प्रेरणा ग्रहण करती हैं। उनमें परम्परा का विरोध नहीं है किन्तु परम्परा के नाम पर रुढ़ियों का अन्ध-समर्थन भी नहीं है। उनके ललित निबन्धों से उनकी संवेदनशील आध्यात्मिक छवि प्रस्तुत होती है । मनुष्य और मनुष्यता के विविध संदर्भ और रूप उनके लेखन को व्यापक परिप्रेक्ष्य प्रदान करते हैं।

उनकी रचनाओं में भाषा संदर्भ के अनुसार खड़ी बोली के साथ-साथ उर्दू, फारसी और देशज शब्दों का प्रयोग हुआ है जो प्रसंगों को जीवन्त और प्रवाहपूर्ण बनाते हैं। निबन्धों में संस्कृत और हिन्दी कविताओं के उद्धरण उनके बहुपठित और सारग्राही आस्वादक और समीक्षक के प्रभाव को दिखाते हैं। उनके कुशल अध्यापन-कौशल और साहित्य को समर्पित अध्यापन शैली उनके आदर्श अध्यापक के रूप को प्रमाणित करती है।

केन्द्रीय भाव :

हिन्दी में डॉक्टर शिवप्रसाद सिंह ललित निबंधकार, कथाकार और समीक्षक के रूप में प्रख्यात हैं। हिन्दी निबन्ध को अपनी सृजन-प्रतिभा से एक नई आभा प्रदान करने वाले डॉ. सिंह ने निबंध में विचार-तत्व और भाव-तत्व का समन्वय करके उसे सौन्दर्यग्राही बनाया है। प्रस्तुत निबन्ध में डॉ. सिंह ने रंगों को अनेक रंगतों में उद्घाटित किया है।

रंग केवल वैसे ही नहीं हैं जैसे हम उन्हें देखते हैं या जैसे वे वस्तुओं में प्रकट होते हैं। रंगों का संसार अनेक उत्प्रेरणाएँ प्रकट करने वाला होता है। रंगों का सामाजिक प्रयोजन, उसके मनोवैज्ञानिक प्रभाव और कविता में रंगों के विविधवर्णी सौन्दर्य को इस निबन्ध में ललित भाव में प्रकट किया गया है।

सामाजिक स्तर पर रंगों की बदलती प्रयोजनीयता से 'काला रंग' विरोध और अशुभ का सूचक बन गया है। भाषागत मुहावरों में भी उसकी सामाजिकता का ही उल्लेख किया गया है। व्यक्ति और समाज के अन्तर्संबंधों को व्यक्त करने वाले मुहावरों में रंग जमाना, रंग उखड़ना आदि का प्रयोग किया जाता है।

कविगण आदिकाल से ही एक विषय पर निरन्तर कविता रचते आ रहे हैं; किन्तु प्रत्येक कवि उसे रंग में प्रस्तुत करता है। इसलिए हर कविता नई लगती है। रंगों के कुछ निश्चित नाम दे दिए गए हैं; किन्तु एक ही रंग के अनेक प्रवाह रहते हैं। कविगण अपनी कविताओं में रंग की इसी सूक्ष्मता को प्रकट करते हैं। उन्होंने भाषिक स्तर पर भी रंगों की इस सूक्ष्मता को पकड़ा है।

मनोवैज्ञानिक स्तर पर रंगों ने अपनी पहचान इस तरह प्रस्तुत की है कि वे भाव-विशेष के द्योतक बन गए हैं। प्रेम का रंग लाल कहा जाता है। रंगों की उत्तेजनाएँ मनुष्य के मन पर गहरा असर डालती हैं। इस असर में प्रकृति की संरचनात्मक भागीदारी है। रंगों को कवियों ने इसी स्तर पर मनोविज्ञान के गहरे आलोक में व्यक्त किया है।

हमारा सांस्कृतिक परिवेश रंगों के सौन्दर्य से ओत-प्रोत है। रंगों के मिश्रण के साथ रंगों के वैषम्य से उत्पन्न होने वाला सौन्दर्य-चमत्कार भी कवियों ने किया है। विरुद्ध के सामंजस्य से उत्पन्न होने वाले इस सौन्दर्य की प्रेरणा भी कवियों को प्रकृति से ही प्राप्त हुई है। सांध्य-रंगों में उदासी और प्रभात के रंगों में प्रसन्नता का भाव प्रकृति-प्रदत्त है। प्रकृति और मनुष्य की साझेदारी से ही रंगों की मनोवैज्ञानिक चेतना का अनुभव किया जा सकता है। काव्यगत अलंकारों और रसो के सन्दर्भ में भी रंगों के महत्व को डॉ. सिंह ने अपने इस निबन्ध में प्रतिपादित किया है।

वस्तुतः इस निबन्ध में रंगों की चर्चा के बहाने संस्कृत साहित्य से लेकर हिन्दी साहित्य के क्षेत्र तक के क्रियाशील कवियों की रंग-विदग्धता को विश्लेषित किया गया है। इस निबन्ध में व्यास-शैली का दिग्दर्शन है। भावनाओं और विचारों के सम्पुट में यह निबंध पल्लवित होता है। प्रस्तुत निबंध में तत्सम शब्दों की प्रचुरता है। निबंध भाषा के उदात्त पक्ष को प्रस्तुत करता है।

रंगोली

रंग आँखों में रहते हैं या वस्तु में, या वे सूर्य की प्रकाश-लहरों से उत्पन्न होते हैं। इस पर वे सोचें जिन्हें रंग को बदरंग करके देखने का अभ्यास हो। हम तो वस्तु में ही रंग देखते हैं। उसी से आँख या मन भी रंगीन हो जाते हों; यह कुछ दूसरी बात है। बिना रंग की वस्तु हो भी सकती है, ऐसी कोई कल्पना तो मेरे मस्तिष्क में नहीं आती। आती भी है तो लगता है जैसे रंगहीन अगणित आकृतियाँ भिन्नता-सूचक रंग-भेद के अभाव में वाष्प-पिण्डों की भाँति आपस में टकरा रही हैं। चेतन-अचेतन में कोई भेद नहीं। परमेष्ठिन् ब्रह्मा की आज्ञा से विश्वनिर्माण के लिए तत्पर विश्वकर्मा के मस्तिष्क में भी शायद ही किसी रंगहीन वस्तु का आभास हुआ हो। और आज के विश्व में तो रंग का जादू सिर चढ़ कर बोलता है। सतरंगा, तिरंगा, इकरंगा (लाल) तो उड़ते ही हैं; अब काला भी उड़ने लगा है। यही नहीं, अपने-अपने देश की अपनी-अपनी बात – कहीं रंग जमता है, कहीं रंग उखड़ता है, कहीं रंग चढ़ता है तो कहीं उतरता है, सब जगह रंग। काव्य में भी रंग होते हैं, बड़े मजेदार, साधारण रंगों से थोड़े भिन्न, स्पर्श से परे, चटकीले और धूमिल।

कोई भी दो चीजें एक सी नहीं होतीं। और एक रंग की चीज सब को एक सी ही दिखेगी : यह भी जरूरी नहीं। बाप ने जिस रंग का आसमान देखा है बेटा भी वैसा देखेगा ही, यह कहना कठिन है। विश्वास न हो तो कवियों के देश में घूमिए। वहाँ एक रंग के बादल दो रंग के दिखाई पड़ते हैं। हमें जो बादल उजला दिखाई पड़ता है, वही आप को काला। खैर, बेटे को अपनी शक्ति और कर्तव्य पर विश्वास हो या न हो, दयालु और स्वभावतः शुभचिन्तक पिता अपनी कमाई उसे सौंप ही जाता है। कवियों के पुरखों ने भी वही किया। रंगों की एक खासी सूची – प्रायः देखी-अनदेखी सभी वस्तुओं के बारे में, वे अपने पुत्रों के नाम छोड़ गए।

फिर भी 'लीक-लीक' चलने वालों में अपना नाम न लिखाने के लिए प्रसिद्ध कवि-पुत्र बाप की बनाई हुई पगडण्डी पर ही कैसे चले? 'सायर' ने अपनी तरह से सभी चीजों को देखा और उसका परिणाम यह हुआ कि 'क्रौंच-वध' से लेकर आज तक जितनी भी कविताएँ हुईं, उनमें एक रंग, एक वस्तु पर पचासों हैं, पर एक सी एक भी नहीं।

रंगों के बारे में जरा सूक्ष्मता से सोचने से लगता है कि मनुष्य को और वस्तुओं के समान ये भी प्रकृति से मिले। मूल रंग चाहे लाल, हरा और नीला ही हों, प्रकृति के द्वारा निर्मित अद्‌भुत रंगों के दर्शन से मानव की अनुकरण-प्रधान बुद्धि को अगणित रंगों का आभास सहज ही मिल गया। प्रकृति की जितनी वस्तुएँ उसने देखीं, उनके रंगों का अनुकरण कोई बहुत बड़ी बात नहीं। देखकर मन ही मन खुश होना आसान है, पर उसे देखकर वैसा ही दूसरों से कह देना मुश्किल है। कवियों की रंग-परख-प्रतिभा की जाँच इसी कसौटी पर होती है कि वह वस्तु को जैसी की तैसी कह देने में कहाँ तक समर्थ है। श्यामपट का रंग भी काला होता है। कौवा भी काला होता है। आकाश में छाने वाले सजल जलद भी काले होते हैं। पर तीनों का रंग एक सा नहीं होता। खड़िया भी श्वेत होती है, बर्फ भी श्वेत होती है, तुषार भी श्वेत होता है पर तीनों में अन्तर है। बादल के लिए खूब बारीक 'स्निग्धभिन्नाञ्जनाभा' और श्वेत तुषार मण्डित कैलास को सद्यः काटे हुए हाथी के दाँत के समान गौर वर्ण के कहने वाले विरले हैं। रंगों के अन्दर जो अन्य गुण मिश्रित हैं, उन्हें भिन्न करके नहीं देखा जा सकता। गुलाब की पंखुड़ी लाल है, कोमल है : इसे कहेंगे कोमल लाल यानी मसृण राग, सुवर्ण पीला है पर मसृण नहीं। पीली वस्तु को भी कमल के समान कहने का अर्थ कोमलता ही है। शिशिर के प्रभाव से नष्टप्राय कमलों के अभाव में उमा वहाँ एक स्वर्ण कमल उत्पन्न कर देती थी। यहाँ स्वर्ण उमा के रंग की पिंगलता और कमल उसकी कोमलता का वाचक है। दोनों को अलग करके नहीं देखा जा सकता। मुख स्वर्णिम कमल जैसा था - स्वर्णनिर्मित कमल जैसा नहीं।

किस रंग के साथ किस रंग का सन्धान या मिश्रण उचित होगा, इसे भी मानव ने प्रकृति से ही सीखा। पीला के साथ-साथ लाल या अन्य रंग बिना मिश्रण के दिखाना रंग-सन्धान कहा जा सकता है। काले में पीला को मिलाकर नीला प्राप्त करना रंग-मिश्रण है। 'कजरारी अँखियान' में बसने वाले कृष्ण के बारे में गोपी कहती है - ''सखि वे पीले हैं, पर आँखों में रहने के कारण नीले दिखाई पड़ते हैं।'' राधा की पिंगलता के प्रभाव से श्याम कृष्ण की 'हरित दुति' प्रसिद्ध ही है। शरद के नीले आकाश में 'विद्रुमभंगलोहित' मुख वाली हरे शुकों की पंक्ति धान की पीली बालियाँ लिए उड़ती हुई आकाश में इन्द्रधनुष बना देती है। यहाँ रंग-सन्धान का सुन्दर दर्शन होता है। कृष्ण की हरे बाँस की बाँसुरी भी होठों की ललाई और पीत वस्त्र की पीताभा के सम्मिश्रण से इन्द्रधनुष सी छा जाती है।

सचमुच रंगों की दुनिया बड़ी ही विचित्र और मनमोहक होती है। जरा सा रंग पहचानने की कला मालूम हो तो निधड़क चलिए - अद्‌भुत देश है वह, जहाँ अमूर्त वस्तुएँ भी रंगीन दिखाई पड़ती हैं। अपने-अपने देश की बात, आपके लिए तो जैसा देश, वैसा वेश बनाना ही होगा। 'अनुराग' को शायद ही किसी ने देखा हो, वहाँ उसे 'लाल' कहते हैं। आप शायद ननुनच करें। पर बात कुछ तर्क-सम्मत है, इस पर शायद आप सोचते न होंगे। आइए फिर 'लाल' की लाली देखिए, आप भी लाल होंगे ही। सूक्ष्म और अमूर्त वस्तुओं को भी रंगीन बनाना आदमी ने प्रकृति से ही सीखा। बच्चे को तो कोई सिखाने जाता नहीं, फिर वह परछाई और कौआ देखकर क्यों डरता है? रात में वह चिहुँक क्यों उठता है? काली रात बच्चे को ही नहीं आदमी को भी भयावनी लगती है। लड़का चाँद क्यों माँगता है? घुघुने का रंग काला क्यों नहीं होता? बहुत सी बातें हैं - रात भयावनी लगती है, साँझ मनहूस और दोपहर उदास! सबेरा प्रफुल्ल लगता है। कुँई का फूल शीतल है, अढ़हुल के फूल में कुछ विचित्र वैभवपूर्ण आकर्षण। सब जगह रंग की ही रंगबाजी है। श्वेत जल के सरोवर में, शरद की चाँदनी में, श्वेत कुमुद नयनों को शीतल लगते हैं, पवित्र लगते हैं। देखने से सुख मिलता है। इस प्रकार की श्वेत-सुन्दरता - (खड़िया के रंग सा श्वेत नहीं) कला में है, क्योंकि वह शीतल है, सुखद है। कला की अधिष्ठात्री देवी श्वेत हैं, उनका आसन-वसन सब श्वेत - कला-गुरु-शिव श्वेत हैं, उनका वास-वसन-वाहन सब श्वेत, गंगा, कैलास, नन्दी सब श्वेत, भाल की चन्द्रकला भी श्वेत।

अँधेरी रात भयावनी है। काला रंग भयप्रद है। 'कपालाभरणा' दुर्गा का रंग काला है। पाप का रंग काला है। दुर्ग्रह

शनि का रंग काला है। कृत्या, विष और छाया का रंग काला है। शिव श्वेत हैं; पर प्रलयंकर रुद्र नील-लोहित। उषा की अरुणिमा मादक है, रतनारी आँखें मादक हैं, रक्त कादम्ब मादक है, और अनुराग तथा शृंगार सब लाल हैं। शृंगार और कामुकता भारतीय संस्कृति में गृहीत नहीं हैं। रवि बाबू ने संयमयुक्त प्रेम को ही, जो कल्याणोन्मुख हो, असली प्रेम कहा है।

सूक्ष्मता से ध्यान देने पर भारतीय संस्कृति के प्राय: अधिकांश दृश्य इसी आधार पर रंगे दिखाई पड़ेंगे। अमूर्त देव, अमूर्त विचार, सभी रंगीन हैं। सबका आधार सूक्ष्म पर्यवेक्षण और पूर्ण प्रकृति-निरीक्षण ही है।

रंगों के आधार पर काव्य के अन्दर अद्‌भुत-अद्‌भुत कार्य होते हैं। आप से पूछा जाए - वय:सन्धि किसे कहते है? यौवन और बुढ़ापा की पहचान क्या है? मुग्धा और गर्भवती के रंग कैसे हैं? आप चकरा जाइएगा। पर जरा सा भी कुशल कवि रंगों की रंगबाजी से, अपनी तूलिका की हलकी कारीगरी से इन सभी अवस्थाओं को आपके सामने ला उपस्थित करेगा। आपमें जरा-सी रंग की पहचान हो, कवि के द्वारा रंग-स्पर्श से सजीव सौन्दर्य को देखकर आप बच्चे सा बोल उठिएगा। नारी, पुरुष, वीर, डरपोक, हँसोड़, मुग्धा, नवोढ़ा, वृद्धा, गर्भवती आदि सबके अलग रंग-भेद होते हैं।

रंगों के आधार पर ऋतुओं का रूप साकार हो जाता है। पाटल संसर्ग से सुरभित वायु की लालिमा, तप्त-कांचन वर्ण सूर्य की प्रखरता, और 'परिणाम रमणीय दिवस' की लाल साँझ अपनी लालिमा में गर्मी को खड़ा कर देती है। काले मतवाले हाथी पर सवार विद्युत-झण्डियों वाले वर्षा-राज को देखते ही इन्द्रधनुष आँखों में छा जाता है। श्वेत कमल सी मुख वाली 'काशांशुका' हंस-ध्वनि की पायल झंकार से अपने आने की सूचना देने वाली शरत किसे भूलेगी। लोध्र के प्रसूनों को खिलाती, पके धानों को हिलाती हुई विलीन पद्म-सरों में छा जाने वाली पीली हेमन्त आगे खड़ी मालूम होती है। दिन में चाँदनी-सी धूप वाली और रात में पीले तारों वाली शिशिर को सभी पहचानते हैं। 'दीपशिखा' से सुन्दर डग भरते 'बन-बाग में बगरने' वाले बसन्त का क्या पूछना।

वस्तुत: रंगों के आधार पर ही रसों का तथा अलंकारों का वर्णन भी सम्भव हो पाता है। रंगों की व्यंजनाएँ भी बड़ी मजेदार होती हैं। रंग-भ्रान्ति और रंग-परिवर्तन विरह-वर्णनों में स्वभावत: अधिक दिखाई पड़ते हैं।

रीतिकालीन कवियों की जिन्दादिली तो रंगबाजी में ही दिखाई पड़ती है। संस्कृत के पिछले खेमे के कवियों की अतिशयोक्तियों में भी गहरी रंगबाजी है। 'प्रियालकाली' की धवलिमा पर अफसोस करने वाले भोजराज के कवि का यश:वर्णन तो सभी जानते हैं। रीतिकाल तो उससे भी आगे है। सहज रागारुण एड़ी का रंग छुड़ाने को उद्‌यत नाइन खून ही निकाल डालती है। गोपी को सारा संसार, यमुना, कदम्ब-कुंज, घटा, वनस्पतियाँ सभी श्याम नजर आती हैं। राधा और कृष्ण के प्रेम की पराकाष्ठा का नतीजा होता है कि नन्दगाँव पर गोरीघटा और बरसाने में श्यामघटा छा जाती है। महावर और रोरी के लाल रंगों का विभेद गोपी खूब जानती थी, इसलिए बहाना बनाने वाले को वह टोकती है, 'हाय! हाय! इतने बड़े ब्रजमण्डल में तुम्हें माँगने पर रंचक रोरी नहीं मिली कि तुम सिर पर महावर लगा आए।

कविवर पंत के यहाँ इन रंगों का जादुई माहौल अद्‌भुत चित्ताकर्षक हो उठा है। वे 'शीतल हरीतिमा' की छाया में बैठे, अनन्त दृग सुमन फाड़कर दर्पण की तरह फैले ताल में पहाड़ को झाँकते देखते हैं। नौका-विहार करते वक्त ग्रीष्म की गंगा के तापस बाला के समान रूप के भीतर शुक्रतारे की झलमलाती छाया में रूपहले केशों वाली परी का तैरना उन्हें भूलता नहीं।

रंगों की दुनिया इतनी अद्‌भुत है कि कवि के शब्दों में कहना पड़ता है -

'यह कैसा वातास
कि मन को नयन नयन कर दिया।'

इन्हीं रंगों की चमत्कारिता से मोहित होकर तुलसी बोल पड़े थे – 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी।'

रंग के बिना सब कुछ सूना है। जो एक बार रंगों की दुनिया में प्रवेश करता है, चाहे वह गैरिक वाणी का ही कवि हो, उसे बरजोरी कहना पड़ता है – ''बोरत तो बोर्‌यौ पर निचोरत बनै नहीं।''

अभ्यास

अति लघु उत्तरीय प्रश्न –

1. बिना रंग की वस्तु के सम्बन्ध में लेखक ने क्या कहा है ?
2. श्वेत रंग की वस्तुओं के दो उदाहरण दीजिए।
3. काले रंग को भयप्रद क्यों कहा है ?
4. ''शीतल हरीतिमा'' वाक्यांश का प्रयोग निबन्धकार ने किस कवि के संदर्भ में किया है ?

लघु उत्तरीय प्रश्न –

1. ''कोई भी दो चीजें'' एक सी क्यों नहीं होती ?
2. एक रंग के साथ दूसरे रंग का मिश्रण मानव ने प्रकृति से सीखा है । इसकी पुष्टि हेतु दो उदाहरण दीजिए।
3. लेखक ने अनुराग ओर लाल को समानार्थी क्यों बताया है?
4. रंग की पहचान करने से होने वाले तीन लाभ लिखिए।
5. ''रंग के बिना सब कुछ सूना है।'' लेखक के इस कथन का आशय क्या है ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

1. रंगों की दुनिया को ''विचित्र और मनमोहक'' क्यों कहा है ?
2. ऋतुओं का रूप साकार करने के लिए रंगों का प्रयोग होता आया है। उदाहरण देकर समझाइए।
3. **निम्नलिखित पंक्तियों का भाव विस्तार कीजिए –**

   (अ) ''काले मतवाले हाथी पर सवार विद्युत–झण्डियों वाले वर्षा–राज को देखते ही इन्द्रधनुष आँखों में छा जाता है ।''

   (ब) ''रीतिकालीन कवियों की जिन्दादिली तो रंगबाजी में ही दिखाई पड़ती है।''

4. **निम्नलिखित गद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए –**

   (अ) ''आज के विश्व में तो ..... चटकीले और धूमिल।''

   (ब) ''राधा की पिंगलता के प्रभाव ..... इन्द्रधनुष सी छा जाती है।''

   (स) ''श्वेत जल के सरोवर में ..... भाल की चन्द्रकला भी श्वेत।''

   (द) ''राधा और कृष्ण के प्रेम की ..... सिर पर महावर लगा आए।''

भाषा-अध्ययन

1. निम्नलिखित अशुद्ध वाक्यों को शुद्ध रूप में लिखिए -

1. मेरी साड़ी तुमसे अच्छी है।
2. हम अपने पिता के सबसे बड़े लड़के हैं।
3. शिकारी ने उस पर गोली चलाई पर शेर बच निकला।
4. मैंने कारीगर से एक घर को बनवाया।
5. अब राधा मेरे यहाँ जाया आया नहीं करती।

2. हिन्दी में तुलना के तीन सोपान होते हैं

यथा - लघु लघुतर लघुतम

इसी आधार पर नीचे दिए गए शब्दों को तुलनात्मक स्वरूप दीजिए -

दिव्य, सूक्ष्म, अधिक, उच्च, गहन

3. 'मातायें' शब्द का मानक प्रयोग हैं माताएँ इसी प्रकार दिए गए शब्दों के मानक प्रयोग लिखिए -

शालायें . . . . . .

बालिकायें . . . . . .

चाहिये . . . . . .

नये . . . . . .

किये . . . . . .

4. कभी-कभी शब्दों के आद्याक्षर संयुक्त होकर नया रूप बनाते हैं जैसे - ननि - नगर निगम। इसी प्रकार दिए गए शब्दों के संक्षिप्त स्वरूप लिखिए -

1. व्यावसायिक परीक्षा मंडल
2. राष्ट्रीय सेवा योजना
3. दैनिक वेतन भोगी
4. जीवन बीमा निगम

समझिए

राजभाषा : राष्ट्रभाषा जहाँ अन्य भाषा-भाषी राज्यों के बीच सेतु का काम करती है वहीं राजभाषा, राज्य के प्रशासनिक काम-काज की भाषा है। राजभाषा अधिनियम के अनुसार क्षेत्रीय भाषा के साथ-साथ हिन्दी में अनुवाद स्वीकार होता है। राजभाषा से तात्पर्य है, जो राजकीय व्यवहार की भाषा हो। किसी भाषा को राजभाषा का दर्जा मिल जाने पर उसका महत्व बढ़ जाता है। शासकीय सेवा में उस भाषा का ज्ञान आवश्यक होता है। तमिलनाडु में तमिल ओर महाराष्ट्र में मराठी राजभाषाएँ हैं। मध्यप्रदेश, राजस्थान, बिहार, उत्तरप्रदेश आदि में हिन्दी ही राजभाषा है। उनका सरकारी पत्र व्यवहार हिन्दी में होता है।

5. राजभाषा तथा राष्ट्रभाषा में अन्तर लिखिए।

योग्यता विस्तार

1. आप अपने चारों ओर प्रकृति को ध्यान से देखिए। विभिन्न रंगों के समायोजन से जो वस्तुएँ आपको मन मुग्धकारी लगें, उनकी सूची बनाइए।
2. आपको जो रंग पसंद हो उस रंग की दस वस्तुएँ संगृहीत करें।
3. नीला और पीला रंग मिलकर हरा रंग बनता है। इसी तरह से अन्य रंग मिश्रण से आप नए रंग बनाइए और लिखिए।
4. प्रकृति से प्राप्त विभिन्न रंगों से अपने बनाए चित्रों में रंग भरिए।
5. रंग, वसंत, या होली पर लिखी पाँच कविताओं का संकलन कीजिए।

शब्दार्थ

क्षालित = धुले हुए

वाष्प पिण्डों = भाप का समूह

धूमिल = अधमैला, धुएँ के रंग का

परिशिष्ट = अंत का बचा हुआ भाग

रंगपरख प्रतिभा = रंगपारखी, रंग पहचानने वाले

मसृण = चिकना

वरजोरी = जबरदस्ती

रंगसंधान = रंगों की खोज

मुक्ता = मोती

चिहुँक = चौंककर

भयप्रद = भययुक्त, डरावना

अतिशयोक्ति = बढ़ा-चढ़ाकर कहना

दृग सुमन = पुष्प रूपी नेत्र

वातास = वायु

विलोचन = नेत्र, दृष्टि

परमेष्ठिन = ब्रह्मा

पुरखों = पूर्वजों

म्यूजियम = संग्रहालय

स्निग्धभिन्नाञ्जनाभा = स्निग्ध लेपयुक्त चमक

श्वेत तुषार मण्डित = धवल तुषार (पाला) से शोभायमान

पिंगलता = छंदयुक्तता, पीलापन

पीताभ = पीत आभा से युक्त

कुँइ = कुमुदिनी

अधिष्ठात्री = सर्वमान्य

पाटल = गुलाब

रागारूण = लालिमायुक्त

तापस बाला = तपस्वी कन्या

बोरत तो बोर्‌यौ पर निचोरत बनै नहीं = भाव में डूबकर उससे न निकल न पाने की स्थिति

❋ ❋ ❋

गीता और स्वधर्म

केन्द्रीय भाव :

गीता का चिंतन सार्वजनीन एवं सार्वदेशिक है अनेक महापुरुषों ने इसमें निहित सूत्रों को स्पष्ट किया है। सबकी अपनी अलग-अलग दृष्टि होते हुए भी मूलभाव एक सा रहता है। श्री विनोबा भावे ने भी अपने प्रवचनों को गीता के ''स्थितप्रज्ञ'' पर केन्द्रित किया था। उन्होंने इसके माध्यम से मानव बुद्धि को परिष्कृत करने का संदेश दिया। न्याय-अन्याय में भेद करने की दृष्टि इसमें निहित है।

प्रस्तुत ''गीता और स्वधर्म'' पाठ विनोबा जी के गीता प्रवचन का संकलित एवं सम्पादित अंश है। इसमें मनुष्य को स्वधर्म का पालन करने का मार्गदर्शन है। इस पाठ के लेखक विनोबा जी है।

गीता का और मेरा संबंध तर्क से परे हैं। मेरा शरीर माँ के दूध पर जितना पला है, उससे कहीं अधिक मेरे हृदय और बुद्धि का पोषण गीता के दूध पर हुआ है। जहाँ हार्दिक संबंध होता है, वहाँ तर्क की गुंजाइश नहीं रहती। तर्क को काटकर श्रद्धा और प्रयोग, इन दो पंखों से ही मैं गीता-गगन में यथाशक्ति उड़ान भरता रहता हूँ। मैं प्रायः गीता के ही वातावरण में रहता हूँ। गीता मेरा प्राणतत्व है। जब मैं गीता के संबंध में किसी से बात करता हूँ, तब गीता-सागर पर तैरता हूँ और जब अकेला रहता हूँ तब उस अमृत-सागर में गहरी डुबकी लगाकर बैठ जाता हूँ।

गीता की योजना महाभारत में की गयी है। गीता महाभारत के मध्यभाग में एक ऊँचे दीपक की तरह स्थित है, जिसका प्रकाश पूरे महाभारत पर पड़ रहा है। एक ओर छह पर्व और दूसरी ओर बारह पर्व, इनके मध्यभाग में, उसी तरह एक ओर सात अक्षौहिणी सेना और दूसरी ओर ग्यारह अक्षौहिणी, इनके भी मध्यभाग में गीता का उपदेश दिया जा रहा है।

यह तो सभी जानते हैं कि गीता श्रीकृष्ण ने कही है।

कुछ लोग कहते हैं कि अर्जुन का क्लैब्य दूर करके उसे युद्ध में प्रवृत्त करने के लिए गीता कही गयी है। उनके मत में गीता केवल कर्मयोग ही नहीं बताती, बल्कि युद्ध-योग का भी प्रतिपादन करती है। पर जरा विचार करने से इस कथन की भूल हमें दिख पड़ेगी। अठारह अक्षौहिणी सेना लड़ने के लिए तैयार थी। तो क्या हम यह कहेंगे कि सारी गीता सुनाकर भगवान् ने अर्जुन को उस सेना की योग्यता का बनाया? अर्जुन घबड़ाया, न कि वह सेना। तो क्या सेना की योग्यता अर्जुन से अधिक थी? यह बात कल्पना में भी नहीं आ सकती। अर्जुन, तो लड़ाई से परावृत्त हो रहा था, सो भय के कारण नहीं। सैकड़ों लड़ाइयों में अपना जौहर दिखाने वाला वह महावीर था। उत्तर-गो ग्रहण के समय उसने अकेले ही भीष्म, द्रोण और कर्ण के दाँत खट्टे कर दिये थे। सदा विजय प्राप्त करने वाला और सब नरों में एक ही सच्चा नर, ऐसी उसकी ख्याति थी। वीरवृत्ति उसके रोम-रोम में भरी थी।

कुछ दूसरे लोग कहते हैं कि अर्जुन की अहिंसा-वृत्ति को दूर करके उसे युद्ध में प्रवृत्त करने के लिए गीता कही गयी है। मेरी दृष्टि से यह कथन भी ठीक नहीं है। यह देखने के लिए पहले हमें अर्जुन की भूमिका बारीकी से समझनी चाहिए।

अर्जुन, जो समर-भूमि में खड़ा हुआ, सो कृत-निश्चय होकर और कर्तव्य भाव से। क्षात्र वृत्ति उसके स्वभाव में थी। युद्ध को टालने का भरसक प्रयत्न किया जा चुका था, फिर भी वह टला नहीं था। कम-से-कम माँग का प्रस्ताव और श्रीकृष्ण जैसे मध्यस्थता, दोनों बातें बेकार हो चुकी थी। ऐसी स्थिति में अनेक देशों के राजाओं को एकत्र करके और श्रीकृष्ण से अपना सारथ्य स्वीकृत कराकर वह रणांगण में खड़ा है और वीरवृत्ति के उत्साह के साथ श्रीकृष्ण से कहता है - ''दोनों सेनाओं के बीच मेरा रथ खड़ा कीजिए, जिससे मैं एक बार उन लोगों के चेहरे तो देख लूं, जो मुझसे लड़ने के लिए तैयार होकर आये हैं।'' कृष्ण ऐसा ही करते हैं। अर्जुन चारों ओर एक निगाह डालता है, तो उसे क्या दिखायी देता है? दोनों ओर अपने ही नाते-रिश्तेदारों, सगे-संबंधियों का जबरदस्त जमघट। वह देखता है कि दादा, बाप, बेटे, पोते, आप्त-स्वजन-संबंधियों की चार पीढ़ियाँ मरने-मारने के अंतिम निश्चय से वहाँ एकत्र हुई हैं। यह बात नहीं कि इससे पहले उसे इन बातों की कल्पना न हो, परंतु प्रत्यक्ष दर्शन का कुछ अलग ही प्रभाव पड़ता है।

उस सारे स्वजन समूह को देखकर उसके हृदय में एक उथल-पुथल मचती है। उसे बहुत बुरा लगता है। आज तक उसने अनेक युद्धों में असंख्य वीरों का संहार किया था। उस समय उसे बुरा नहीं लगा था, उसका गांडीव हाथ से गिर नहीं पड़ा था, शरीर में कंप नहीं हुआ था, उसकी आँखे गीली नहीं हुई थी। तो फिर इसी समय ऐसा क्यों हुआ? क्या अशोक की तरह उसके मन में अहिंसा-वृत्ति का उदय हुआ था? नहीं, यह तो केवल स्वजनासक्ति थी। इस समय भी यदि गुरु, बंधु और आप्त सामने न होते, तो उसने शत्रुओं के मुण्ड गेंद की तरह उड़ा दिये होते। परंतु इस आसक्ति जनित मोह ने उसकी कर्तव्यनिष्ठा को ग्रस लिया और तब उसे तत्वज्ञान याद आया। कर्तव्यनिष्ष्ठ को मोहग्रस्त होने पर भी नग्न-खुल्लमखुल्ला-कर्तव्यच्युति सहन नहीं होती। वह कोई सद्विचार उसे पहचाना है। यही हाल अर्जुन का हुआ। अब वह झूठ-मूठ प्रतिपादन करने लगा कि युद्ध ही वास्तव में एक पाप है। युद्ध से कुल क्षय होगा, धर्म का लोप होगा, स्वैराचार मचेगा, व्यभिचारवाद फैलेगा, अकाल आ पड़ेगा, समाज पर तरह-तरह के संकट आयेंगे, आदि अनेक दलीलें देकर वह कृष्ण को ही समझाने लगा।

यहाँ मुझे एक न्यायाधीश का किस्सा याद आता है कि एक न्यायाधीश था। उसने सैकड़ों अपराधियों को फाँसी की सजा दी थी। परंतु एक दिन खुद उसी का लड़का खून के जुर्म में उसके सामने पेश किया गया। बेटे पर खून का जुर्म साबित हुआ और उसे फांसी की सजा देने की नौबत न्यायाधीश पर आ गयी। तब वह हिचकने लगा। वह बुद्धिवाद बघारने लगा - ''फाँसी की सजा बड़ी अमानुषी है। ऐसी सजा देना मनुष्य को शोभा नहीं देता। इससे अपराधी के सुधरने की आशा नष्ट हो जाती है। खून करने वाले ने भावना के आवेश में खून कर डाला। परंतु उसकी आंखों पर से जुनून उतर जाने पर उस व्यक्ति को गंभीरतापूर्वक फाँसी के तख्ते पर चढ़ाकर मार डालना समाज की मनुष्यता के लिए बड़ी लज्जा की बात है, बड़ा कलंक है'' आदि दलीलें वह देनें लगा। यदि अपना लड़का सामने न आया होता, तो जज साहब बेखटके जिंदगीभर फाँसी की सजा देते रहते। किन्तु वे अपने लड़के से स्नेह के कारण ऐसी बातें करने लगे। उनकी वह बात आंतरिक नहीं थी। वह आसक्ति जनित थी। 'यह मेरा लड़का है' इस स्नेह में वह वाङ्मय निकला था।

अर्जुन की गति भी इस न्यायाधीश की तरह हुई। उसने जो दलीलें दी थी, वे गलत नहीं थी। पिछले महायुद्ध के ठीक यही परिणाम दुनिया ने प्रत्यक्ष देखें हैं। परन्तु सोचने की बात इतनी ही है कि वह अर्जुन का तत्वज्ञान (दर्शन) नहीं था, कोरा प्रज्ञावाद था। कृष्ण उसे जानते थे। इसलिए उन्होंने उस पर जरा भी ध्यान न देकर सीधा उसके मोह-नाश का उपाय शुरू किया। अर्जुन यदि सचमुच अहिंसावादी हो गया होता, तो उसे किसी ने कितना ही अवांतर ज्ञान-विज्ञान बताया होता, तो भी असली बात का जवाब मिले बिना उसका समाधान न हुआ होता। परंतु सारी गीता में इस मुद्दे कहीं भी जवाब नहीं दिया है, फिर भी अर्जुन का समाधान हुआ है। यह सब कहने का अर्थ इतना ही है कि अर्जुन में अहिंसा-वृत्ति नहीं थी, वह युद्ध प्रवृत्त ही था। युद्ध उसकी दृष्टि से उसका स्वभावप्राप्त और अपरिहार्य रूप से निश्चित कर्तव्य था। उसे वह मोह के वश होकर टालना चाहता था। और गीता का मुख्यतः इस मोह पर ही गदा प्रहार है।

इस सारे विवेचन से एक बात आपकी समझ में आ गयी होगी कि गीता का जन्म, स्वर्धम में बाधक जो मोह है, उसके निवारणार्थ हुआ है। अर्जुन धर्म-संमूढ हो गया था। स्वधर्म के विषय में उसके मन में मोह पैदा हो गया था। श्रीकृष्ण के पहले उलाहने के बाद यह बात अर्जुन खुद ही स्वीकार करता है। वह मोह, वह ममत्व, वह आसक्ति दूर करना गीता का मुख्य काम है। इसीलिए सारी गीता सुना चुकने के बाद भगवान् ने पूछा है -''अर्जुन, तेरा मोह गया न? और अर्जुन जवाब देता है, ''हाँ, भगवान्, मोह नष्ट हो गया, मुझे स्वधर्म का भान हो गया।'' इस तरह यदि गीता के उपक्रम और उपसंहार को मिलाकर देखे, तो मोह निरसन ही उसका तात्पर्य निकलता है। गीता ही नहीं सारे महाभारत का यही उद्देश्य है व्यासजी ने महाभारत के प्रारंभ में ही कहा है कि लोक हृदय के मोहावरण को दूर करने के लिए मैं यह इतिहास प्रदीप जला रहा हूँ।

अभ्यास

अति लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. अर्जुन के स्वभाव में कौन सी वृत्ति विद्यमान थी ?
2. किस सजा से अपराधी के सुधरने की आशा नष्ट हो जाती है ?
3. लेखक किस सागर में डुबकी लगाकर बैठ जाता है ?
4. किस ने श्रीकृष्ण से अपना सारथ्य स्वीकार कराया ?
5. युद्ध में आज स्वजन सम्बन्धियों की कितनी पीढ़ियाँ एकत्र हुई थी ?
6. अर्जुन के मन में कौन सा भाव उत्पन्न हो गया था ?

लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. गीता के गगन में लेखक किन उपकरणों से उड़ान भरता है ?
2. अर्जुन ने अकेले ही किन-किन के दाँत खट्टे कर दिये थे ?
3. युद्ध टालने के लिए कौन-कौन सी दोनों बातें बेकार हो चुकी थी ?
4. लेखक के अनुसार गीता के जन्म का उद्देश्य क्या था ?
5. लेखक के अनुसार गीता का मुख्य काम क्या-क्या है ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न -

1. विनोबा जी का गीता के साथ किस प्रकार का सम्बन्ध था ?
2. अर्जुन को महावीर क्यों कहा गया ?
3. युद्धक्षेत्र में स्वजनों को देखकर अर्जुन के मन में कौन-कौन से भाव उत्पन्न होते हैं?
4. न्यायाधीश के उदाहरण से लेखक क्या सीख देना चाहता है ?
5. श्रीकृष्ण ने अर्जुन की जिज्ञासाओं का कैसे समाधान किया ?
6. गीता का निष्कर्ष क्या है ?

भाषा-अध्ययन

1. दिये गये मुहावरों का वाक्यों में प्रयोग कीजिये -

   1. दाँत खट्टे कर देना 2. उथल-पुथल मचना

3. आँखें गीली होना 4. जौहर दिखाना

5. उड़ान भरना 6. डुबकी लगाना

7. जुनून उतर जाना

2. निम्नलिखित वाक्यों का भाव-विस्तार कीजिए -

अ. जहां हार्दिक संबंध होता है, वहाँ तर्क की गुंजाईश नहीं रहती ।

ब. इस आसक्ति जनित मोह में उनकी कर्तव्यनिष्ठा को ग्रस लिया और तब उसे तत्व ज्ञान याद आया।

योग्यता विस्तार -

1. गीता से संबंधित अधिक जानकारी के लिए - 'गीता प्रवचन', 'गीता माता', 'गीता रहस्य' आदि ग्रन्थों का अध्ययन करें।
2. गीता के संदेश देने विषयक एकांकी के लिए संवाद लेखन कीजिये और कक्षा में प्रस्तुत कीजिये।
3. इस पाठ में आये हुए पारिभाषिक शब्दों को अपने कक्षा शिक्षक से विस्तार से समझिये।
4. विनोबा जी के संदेशों को पोस्टर पर लिखकर कक्षा कक्ष में लगाइये।
5. गीता से प्रेरणा ग्रहण कर महान बनने वाले व्यक्तियों का जीवन परिचय लिखिये।

शब्दार्थ

क्लैब्य = नपुंसकता	*क्षात्रवृत्ति* = क्षत्रिय धर्म	*निरसन* = निराकरण
सारथ्य = सारथि का कार्य	*रणांगण* = युद्धभूमि	*प्रज्ञावाद* = बुद्धिवाद
स्वजनासक्ति = स्वजनों में अनुरक्ति	*कर्तव्यच्युति* = करने योग्य कार्य से विमुखता	*अवान्तर* = अन्य
स्वैराचार = स्वेच्छाचार	*जुनून* = धुन (आवेश) (फारसी शब्द)	*दलीले* = तर्क
आप्त = प्राप्त किया हुआ	परावृत्त = भागना (मैदान छोड़ना)	प्रवृत्त = लीन होना
समर = युद्ध	गांडीव = अर्जुन के धनुष का नाम	परिष्कृत = शुद्ध किया हुआ
कृतनिश्चय = निश्चय किया हुआ	स्थितप्रज्ञ = स्थिर बुद्धि वाला	धर्म संमूढ़ = धर्म के साथ

पारिभाषिक शब्दार्थ

1. *अक्षौहिणी* = सम्पूर्ण चतुराङ्गिणी सेना
   वह सेना जिसमें -

106350	- पैदल,
65610	- घोड़े
21870	- रथ
21870	- हाथी

2. *उपक्रम* - भूमिका = कार्यारम्भ की पहली अवस्था, किसी कार्य के आरम्भ होने से पूर्व की आयोजित तैयारी।
3. *कर्मयोग* =कर्म का वह पालन जो सिद्धि और असिद्धि में समानभाव रखकर किया जाय।
4. *तत्वज्ञान* = ब्रह्मज्ञान, आत्मा और ईश्वर आदि के संबंध में सच्चा और यथार्थ ज्ञान।
5. *उत्तर-गो-ग्रहण* = अर्जुन ने उत्तर कुमार का सारथी बनकर अज्ञातवास के समय गायों का अपहरण करने के लिये आयी हुई कौरव सेना को पराजित किया था।

❋ ❋ ❋

हिन्दी पद्य साहित्य का विकास

आधुनिक काल

भूमिका –

आधुनिक हिन्दी कविता का प्रारंभ संवत् 1900 से माना जाता है। यह काल अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इस काल में हिन्दी साहित्य का चहुँमुखी विकास हुआ। यह काल हिन्दी साहित्य की अनेक प्रवृत्तियों एवं परिवर्तनों को लेकर उपस्थित हुआ। इस काल में धर्म, दर्शन, कला एवं साहित्य सभी के प्रति नए दृष्टिकोण का आविर्भाव हुआ।

आधुनिक हिन्दी कविता के विकासक्रम को विद्वानों ने अनेक प्रकार से वर्गीकृत किया है, किन्तु सर्वमान्य रूप से इस विकास को निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है –

1. भारतेन्दु युग – सन् 1850 से 1900 तक
2. द्विवेदी युग – सन् 1900 से 1920
3. छायावादी युग – सन् 1920 से 1936 तक
4. प्रगतिवादी युग – सन् 1936 से 1943 तक
5. प्रयोगवादी युग – सन् 1943 से 1950 तक
6. नई कविता – सन् 1950 से आज तक

भारतेन्दु युग को आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रवेश द्वार माना जाता है। इस युग के कवियों में नवीन के प्रति मोह साथ ही प्राचीन के प्रति आग्रह भी था। भारतेन्दु युग नवजागरण का युग है। इसमें नई सामाजिक चेतना उभरकर आई। भारतेन्दु युग में देशभक्ति और राजभक्ति तत्कालीन राजनीति का अभिन्न अंग थी, जिसका स्पष्ट प्रभाव इस युग के कवियों में देखा जा सकता है।

भारतेन्दु काल में कविता के क्षेत्र में ब्रजभाषा का प्रयोग एवं गद्य के क्षेत्र में खड़ी बोली का प्रयोग किया गया। खड़ी बोली का विकास इस युग की महत्वपूर्ण घटना है। इस युग में पत्रकारिता, उपन्यास, कहानी, नाटक आलोचना, निबंध आदि अनेक गद्य विधाओं का विकास हुआ, जिसका माध्यम खड़ी बोली है। प्राय: इस युग में प्रत्येक लेखक किसी न किसी पत्रिका का सम्पादन करता था। भारतेन्दु युग में जिन साहित्यिक रूपों और प्रवृत्तियों का बीज बोया गया था, वह द्विवेदी युग में खूब फला फूला।

भारतेन्दु-युगीन काव्य की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

1. **राष्ट्रीयता की भावना** – इस युग के कवियों ने देश-प्रेम की रचनाओं के माध्यम से जन-मानस में राष्ट्रीय भावना का बीजारोपण किया।
2. **सामाजिक चेतना का विकास** – इस काल का काव्य सामाजिक चेतना का काव्य है। इस युग के कवियों ने समाज में व्याप्त अंधविश्वास एवं सामाजिक रूढ़ियों को दूर करने हेतु कविताएँ लिखीं।
3. **हास्य व्यंग्य** – हास्य व्यंग्य शैली को माध्यम बनाकर पश्चिमी सभ्यता, विदेशी शासन तथा सामाजिक अंधविश्वासों पर करारे व्यंग्य प्रहार किए गए।